ISSN : 0373-1200

मार्च 200

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशित हिन्दी की प्रथम विज्ञान पत्रिका

मूल्य : 9.00 रु
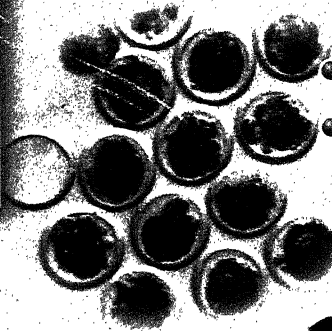
- कौन थे इंसान के पूर्वज ?
- मानव क्लोनिंग : अदम्य चाहत की लम्बी कहानी
- आदमी की कलम
- भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक द्वारा दुग्ध विका
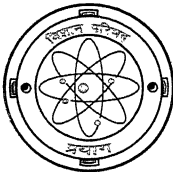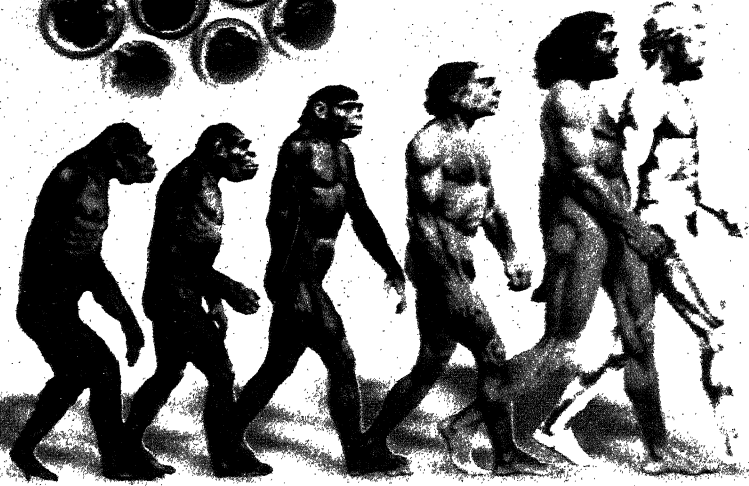
विज्ञान परिषद् प्रयाग

सी. एस. आई. आर. तथा डी. बी. टी. नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

विज्ञान

परिषद् की स्थापना : 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन : अप्रैल 1915
वर्ष : 88 अंक : 12
मार्च 2003

मूल्य
दसवार्षिक : 1,000 रुपये
त्रिवार्षिक : 300 रुपये
वार्षिक : 100 रुपये
यह प्रति : 9.00 रुपये

सभापति
डॉ० (श्रीमती) मंजु शर्मा

सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशक
डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान परिषद् प्रयाग के लिए
नागरी प्रेस
91/186, अलोपी बाग, इलाहाबाद में मुद्रित
फोन : 2502935, 2500068

आन्तरिक सज्जा व टाइप सेटिंग
शादाब खालिद
79/65, सब्ज़ी मण्डी, इलाहाबाद, फोन : 2651264

आवरण
चन्द्रा आर्ट्स
तालाब नवलराय, इलाहाबाद, फोन : 2558001

सम्पर्क
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002
फोन : 2460001 ई–मेल : vigyan1@sancharnet.in
वेबसाइट : www.webvigyan.com

विषय सूची

1. मानव क्लोनिंग : अदम्य चाहत की लम्बी कहानी — 1
– डॉ. रमेश दत्त शर्मा
2. आदमी की कलम — 4
– डॉ अरविन्द मिश्र
3. मानव क्लोनिंग — 5
– राजीव सक्सेना
4. क्लोनिंग : हानि–लाभ तथा प्रतिक्रियाएँ — 7
– डॉ. रमेश बाबू
5. मानव विकास– कौन थे इंसान के पूर्वज — 8
– डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र
6. भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक द्वारा दुग्ध विकास — 11
– डॉ. चन्द्रशेखर चौबे एवं डॉ. शीतला प्रसाद वर्मा
7. चक्रवात तथा उससे बचने के उपाय — 13
– एन.के. चंचलानी, एम. महापात्र एवं डी.सी. गुप्ता
8. हिन्दी.देवनागरी का कम्प्यूटरीकरण : समस्याएँ व सुझाव — 18
– नीलेश कुमार जैन
9. विश्वविद्यालयों में शिक्षण, अनुसंधान एवं तकनीक का त्रिकोण — 22
– प्रो. रामचरण मेहरोत्रा
10. ऊर्जा स्रोत : कोल बेड मीथेन — 26
– शिवेन्द्र कुमार पांडे
11. महामानव राबर्ट बॉयल — 30
– डॉ. श्रवण कुमार तिवारी
12. ज्योतिष का विरोध कौन करता है ? — 33
– आचार्य वेदव्रत मीमांसक
13. विज्ञान वार्ता — 36
– महापंडित राहुल सांकृत्यायन, संजय गोस्वामी,
– श्रीमती उमा वर्मा तथा श्री सुरेश कुमार वर्मा
14. परिवार का लाडला : नेवला — 39
– रामेश बेदी
15. परिषद् का पृष्ठ — 44
– देवव्रत द्विवेदी, अरुण आर्य, डॉ. डी.डी. ओझा
15. कुएँ का भूत (विज्ञान कथा) — 46
– विजय चितौरी
पुस्तक समीक्षा — 47
– प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

[illegible] [illegible]:

अदम्य [illegible] की [illegible] [illegible]

डॉ० रमेश दत्त शर्मा

वेस्ट वर्जीनिया में वकालत का धंधा करने वाला मार्क हण्ट ! मुवक्किलों से ऐंठी गई करोड़ों डालर की कमाई में से इन वकील साहब ने 5 लाख डालर क्लॉड वोरिलहोन को भेंट कर दिए और चरण पकड़ कर गिड़गिड़ाया– प्रभु! मेरा दस महीने का बेटा असमय ही बिछुड़ गया। हे प्रभु! आप उसका क्लोन बना दें। यह बात 1999 की है। क्लाड महाप्रभु से भक्त के आँसू देखे न गए। तुरंत ही किसी गुप्त स्थान में, अन्य वैज्ञानिकों की कुदृष्टि से दूर एक प्रयोगशाला बनाई गई। उसकी प्रवक्ता है ब्रिगिट बोसलिए। क्लोनएड नामक एक कंपनी भी खोल दी गई है। उसकी संचालिका ब्रिगिट ही हैं।

क्लोनएड कंपनी ने मानव कल्याण के निमित्त एक क्लोनिंग मशीन भी बनाई है। मूल्य मात्र 9000 डालर। इस मशीन के बारे में कहा गया है कि यह भ्रूण इकट्ठे करती है। पर भ्रूण तो माँ के गर्भाशय से ही इकट्ठे किए जाते हैं। फिलहाल तो भ्रूण उन क्लिनिकों से लिए जाते हैं, जो परखनली शिशु पैदा करने के लिए जगह–जगह खोले गए हैं।

किसी दिन अन्य तथाकथित अवतारों और बाबाओं की तरह क्लाड वोरिलहोन की पोल भी जरूर खुलेगी। फिलहाल क्लोनएड ने क्लोनिंग से एक बच्चा पैदा करके दे दिया है। एक किसी अमरीकी दम्पत्ति को मिलने वाला है। दो बच्चे दो एशियाई दम्पत्ति के घर क्लोनएड की कृपा से ही किलकारी मारेंगे।

जो बिटिया रानी क्लोनएड ने क्लोनिंग से पैदा की है उनका नाम ईव रखा गया है। वह अपनी माँ की त्वचा की कोशिका से पैदा की गई है। पर बेचारे वकील
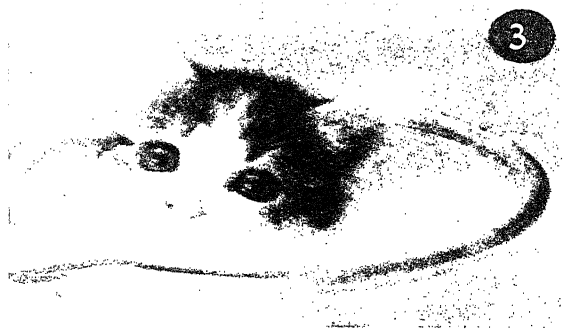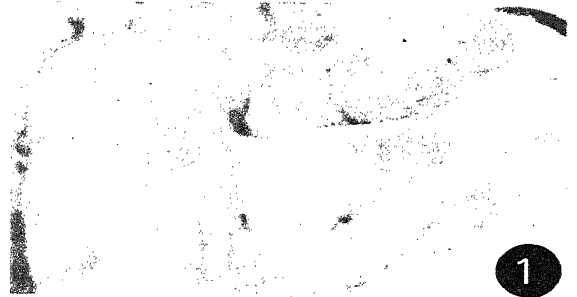
साहब का लड़का कब पैदा होगा ?

क्लाड की इस क्लोन कथा से सबसे अधिक दुःखी हैं डॉ0 सेवरिनो एण्टीनोरी। इटली के इस वैज्ञानिक का तो सपना था कि वह पहला मानव क्लोन पैदा करेगा और नोबल पुरस्कार ले जाएगा। वे बड़े तिलमिला रहे हैं। सबूत तो और वैज्ञानिक भी माँग रहे हैं कि रेलियन संप्रदाय के स्वयंभू गुरु की यह उपलब्धि कितनी सच है और कितनी झूठ। ईव जिस माँ की क्लोन बताई जा रही है, उसका डी.एन.ए. लेकर ईव के डी.एन.ए. से मिलान करके दूध का दूध और पानी का पानी किया जा सकता है। लेकिन ब्रिगिट बोसलिए इसके लिए राजी नहीं हैं।

एण्टीनोरी खुद किसी देश में गुप्त प्रयोगशाला बना कर मानव क्लोनिंग करने में जुटे हुए हैं। वे क्लाड की क्लोन कथा पर यकीन न करें, यह समझा जा सकता है लेकिन सैलथेरा नामक कंपनी की विज्ञान अधिकारी तांजा डोमनिको भी एक मिनट को भी इस पर यकीन नहीं करना चाहतीं। ड्यूक यूनिवर्सिटी मेडिकल सेंटर में सेल बॉयोलाजी की अध्यक्षा डॉ0 ब्रिगिड होगन भी क्लोनएड की छवि को नकारती हुई कहती हैं कि अगर यह सच है तो हमें वैज्ञानिक आँकड़े दिखाए जाएँ।

आदमी की कलम से पहला क्लोन (डाली भेड़) डॉ0 इयान विल्मुट ने पैदा किया था। डाली अपनी माँ की थन–कोशिका से पैदा की गई थी। मुझे डॉ0 विल्मुट के साथी मिले थे और बता रहे थे कि डाली को ज्यादा हिलने–डुलने को नहीं मिला इसलिए गठिया हो गया। अन्य वैज्ञानिक प्रमाण भी मिले हैं कि भेड़–बकरी और गाय–बैल के क्लोन भी अनेक विषमताओं और

क्लोनिंग की तकनीक के जन्म के समय से ही इसके बारे में तमाम तरह के सवाल उठते रहे हैं। क्लोन से पैदा बच्चे की अक्ल भी वैसी ही होगी, यह तो इस बात पर निर्भर करेगा कि बालक का लालन–पालन कैसे होता है, कैसी शिक्षा मिलती है, कैसे संस्कार विकसित होते हैं, कैसा वातावरण और कैसे अवसर मिलते हैं। इसलिए जरूरी नहीं कि आइंस्टाइन या गांधी के क्लोन बनाकर हम इन महामानवों की फौज खड़ी कर लें।

सामान्य प्रजनन की अपेक्षा क्लोनिंग में जटिलताओं का अनुपात अधिक देखा गया है। फिर बिना प्रेम के पैदा संतान की मानसिकता क्या होगी ? 'ए आइ' (आर्टिफिशन इंटेलिजेंस– कृत्रिम मेधा) फिल्मी माँ की तरह यहाँ भी माता–पिता कलमी शिशु से उसी तरह घृणा करने लगे जैसे यह फिल्मी माँ अपने मृत शिशु के रोबोटीय प्रतिरूप से करने लगी थी तो ? क्लोन बनाकर उसके प्रति मोह–ममता न होने के कारण यदि लोगों ने अंगों का व्यापार शुरू कर दिया और मानव क्लोन गाजर–मूली की तरह कटने और बिकने लगे तो क्या होगा ?

कई कानूनी प्रश्न भी हैं। आपका क्लोन आपकी पत्नी का बेटा माना जाएगा या पति ? उसका जायदाद पर अधिकार होगा या नहीं ? अमरीका में तो उसे नागरिकता देने का भी विवाद खड़ा हो गया है। रेलियन सम्प्रदाय ने जिस कलमी 'ईव' को पैदा करने का दावा किया है, वह एक अमरीकी दम्पत्ति की ही संतान है।

फिर अमरीका में भ्रूण को भी बच्चे जैसे मानवाधिकार देने और उसका बीमा कराने की इजाजत दे दी गई है। तो भ्रूण से छेड़छाड़ पर मानवाधिकार के हनन का भी मामला बनता है। 40वें दिन से भ्रूण का दिल धड़कना शुरू करता है यानी उसमें चेतना आ जाती है, आत्मा आ जाती है। यह परमात्मा की देन है। इसमें आदमी क्यों हस्तक्षेप करे। कैथोलिक जैसे अनेक धार्मिक सम्प्रदाय इस प्रकार के प्रश्न उठा रहे हैं। एक अहम सवाल यह भी है कि दुनिया के मर्दों का क्या होगा क्योंकि प्रजनन प्रक्रिया में जो उनका दायित्व था, वह तो क्लोनिंग में बिजली का झटका ही पूरा कर देता है।

विकारों से पीड़ित हो रहे हैं। जब नस्ल सुधारने के लिए गाय–भैंस में कृत्रिम गर्भाधान किया जाता है तो उसमें भी इतनी वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद सफलता की दर 40 प्रतिशत से अधिक नहीं है। गाय में क्लोनिंग से बछिया–बछड़े पैदा करने में भी 5 से 10 प्रतिशत तक सफलता मिली है। 75 प्रतिशत भ्रूण तो पैदा होने से पहले ही मर जाते हैं। जो पैदा हुए हैं, उन क्लोनित पशुओं में भी तरह–तरह के विकार और विकलांगताएँ पाई गई हैं।

पशुओं के क्लोनों में देखा गया है कि उनका आकार–प्रकार सामान्य से दुगुना–चौगुना तक हो जाता है। एक तो खतरा यही है। दूसरे, क्लोनिंग की तकनीक में हर कदम पर असफलता का खतरा भी कम नहीं है। हो सकता है कि अण्डा विभाजित ही न हो या विभाजन से कुछ देर बाद रुक जाए और विभाजन के समय उसमें विकृतियाँ आ जाएँ या गर्भाशय की दीवार से चिपके ही नहीं या गर्भ में मर जाए या गर्भपात हो जाए।

थेरिओजीनोलोजी नामक वैज्ञानिक जर्नल (अंक 51, पृ0 1451 पर प्रकाशित शोधपत्र) में पहली बार यह पोल खोली गई कि गायों में भी कलमी संतानें पैदा करना कितना कठिन है। 75 प्रतिशत क्लोन तो पहले दो महीने में ही गर्भ में काल–कवलित हो गए। एक कलमी बछड़ा पैदा हुआ तो उसके गर्भनाल में सामान्य से छह गुना तरल भरा हुआ था। खून में आक्सीजन की मात्रा सामान्य से एकतिहाई ही पाई गई, जबकि कार्बनडाइआक्साइड की मात्रा सामान्य से तिगुनी थी। एक दिन बाद उसे आक्सीजन दी गई, मगर बचाया नहीं जा सका। चीरफाड़ की गई तो उसके फेफड़े चिपके हुए थे, वे कभी पूरी तरह फूले ही नहीं। दिल का आकार सामान्य से बढ़ा हुआ था। जिगर नरम और गुलाबी होना चाहिए था, मगर नारंगी पटिया जैसा था।

मेसाचुसेट्स में स्थित हेचटैक कंपनी के डॉ0 जिम रोबी का भी ऐसा ही अनुभव है। कलमी बछड़े–बछिया आकार में बड़े होते हैं और उनमें फेफड़े और दिल के कई विकार जन्म से ही पाए गए। किसी की जीभ बड़ी है, किसी का चेहरा अजीब तरह फैला हुआ था, किसी की आँतें बंद हैं, किसी की रोग प्रतिरक्षा प्रणाली काम नहीं कर रही। कुछ ऐसे भी पैदा हुए जो

जिसका क्लोन बनना है उसकी देह में से त्वचा की कोशिकाएं या फिर गाल के अस्तर की कोशिकाएं खुरच ली जाती हैं और एक कोशिका का डी.एन.ए. निकाल कर स्त्री की डम्ब कोशिका यानी अंडे में डाला जाता है। इस अण्डे में उसका अपना केन्द्रक (न्यूक्लियस) पहले ही हटा दिया जाता है। इसके बाद बिजली का झटका दिया जाता है। यह डिम्ब–कोशिका या डिम्बाणु एक से दो–चार–आठ इस तरह विभाजित होने लगता है कि फिर इसे किसी स्त्री के गर्भाशय में रोपा जाता है। नौ महीने बाद जिसका डी.एन.ए. निकाला गया था, उसी की शक्ल और रंग–रूप वाला बच्चा पैदा होगा यानी ऐसे तैयार होता है क्लोन।

जन्म से ही मधुमेह के रोगी थे। किसी की टाँगों की नसें ऐसी थीं कि वे ठीक से खड़े नहीं हो पा रहे थे। मतलब यह कि कलमी पशुओं में अनेक विषमताएँ और जटिलताएँ पाई गई हैं। जब कलमी जानवरों का यह हाल है तो कलमी बालकों का क्या हाल होगा ? यहाँ तक कि जिन बछड़ों–बछियों के भ्रूण उनकी माँ की बजाय दूसरी गायों में रोपे गए उनमें 12 में से 4 गर्भ संबंधी जटिलताओं से मर गईं। एक गाय ने कलमी बछिया पैदा की तो उसके बाद उसका ब्लड प्रेशर बहुत कम हो गया। क्या हम कलमी शिशु पैदा करने में ये सब खतरे उठाने के लिए तैयार हैं ? पशुओं में तो एक ही नस्ल के क्लोन पैदा होने लगे। जैव विविधता खत्म हो जाने का भी खतरा पैदा हो जाएगा। कार्नेल यूनिवर्सिटी के जॉन हिल ने देखा कि कलमी बछियों में अक्ल और व्यवहार कुशलता भी कम थी। चूहे के क्लोन बनाने में माहिर हवाई यूनिवर्सिटी के एक वैज्ञानिक ने बताया कि तीन कलमी चूहों में एक चंद हफ्तों में ही बेहद मोटा हो जाता है।

फिर भी अमरीका में अच्छी नस्ल की गायों और सांडों के क्लोन बनाने का धंधा खूब पनप रहा है।

शेष पृष्ठ 48 पर.....

आदमी की कलम

डॉ0 अरविन्द मिश्र

अनीश्वरवादी धार्मिक सम्प्रदाय रायेलियन के इस दावे से कि आदमी की कलम सचमुच उगा ली गई है, समूचे विश्व में खलबली मची हुई है। राजनेता, समाजसेवी, नीतिशास्त्री सभी स्तब्ध और बेचैन हो उठे हैं। रायेलियन द्वारा संचालित क्लोनएड संस्था की स्वामिनी ब्रिजिट बोसलिए का कहना यदि सच है तो एक अमेरिकी दम्पत्ति को 'कहीं' गुप्त स्थल पर 'ईव' (हौवा) यानि एक क्लोन बेटी प्राप्त हो चुकी है। मगर विश्व के तमाम वैज्ञानिकों को इस दावे पर सहसा विश्वास नहीं हो रहा है। वे सारे मामले को बस एक 'हौव्वा' ही समझ रहे हैं– हकीकत से कोसों दूर। ..... और उनका या सोचना वाजिब भी है।

आदमी की कलम उगाने का यह दावा कोई नया नहीं है। आज से करीब 25 वर्ष पहले 1978 में एक अमेरिकी पत्रकार डेविड रोरविक ने ऐसा ही एक दावा किया था– "इन हिज इमेज : द क्लोनिंग आफ ए मैन' नामक अपनी पुस्तक के जरिए। पुस्तक रातोंरात बहुचर्चित हो गई थी और उसकी प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक गई थीं। इस पुस्तक में 1973 के दौरान एक 'धनकुबेर' (जिसे रोरविक ने 'मैक्स' का छद्मनाम दिया था) की उस मुहिम का हवाला दिया गया था जिसके तहत उसने अपना क्लोन बनवाने की ठान ली थी। रोरविक ने अपनी पुस्तक में बड़े विस्तार से यह बताया था कि कैसे प्रशान्त महासागर की लहरों से कहीं अठखेलियाँ खेलती एक प्रयोगशाला में उस धनकुबेर का 'क्लोन' भ्रूण उपजा था और किस तरह उसे एक छद्मनामी धाय माँ, 'स्पैरो' की कोख में सफलतापूर्वक प्रत्यारोपित कर दिया गया था। और इस तरह पहला मानव क्लोन तो 1976 में ही जन्म पा गया था। यह क्लोन कथा 'न्यूयार्क पोस्ट' में मार्च 1978 में पूरी सजधज के साथ छपी थी। इस क्लोन कथा के बस छपने की देर थी। ऐसा हो– हल्ला मचा कि अमेरिकी कांग्रेस ने पूरी घटना की छानबीन के लिए एक जाँच समिति ही गठित कर दी थी। वैज्ञानिकों का एक खेमा भी पीछे नहीं रहा। सुप्रसिद्ध 'साइंस' पत्रिका के मार्च 24, 1978 के अंक में वैज्ञानिकों ने रोरविक के दावे की धज्जियाँ उड़ा दीं– उन्होंने यह साफ साफ बता दिया कि मेंढ़कों और भेखों (टोड) की क्लोनिंग की जिस तकनीक का जिक्र रोरविक ने अपनी किताब में किया था, वह स्तनपोषियों की क्लोनिंग में कामयाब नहीं हो सकती।

रोरविक के दावे की पोल खुलनी शुरू हो गई थी। इस सारे मामले का तब पटाक्षेप ही हो गया जब एक ब्रितानी जैवविद (जिसका जिक्र पुस्तक में किया गया था) ने रोरविक पर मानहानि का मुकदमा ठोक दिया। आगामी वर्षों में रोरविक को भुला दिया गया और अब ठीक उसी लहजे के साथ रायेलियन पंथ ने पहले मानव क्लोन (?) के जन्म का उद्घोष कर दिया है। रोरविक की याद ताजा हो उठी है। एक बार फिर ठीक वैसे ही घटनाचक्र घूम उठा है। फिर से मामला अदालत तक जा पहुँचा है। 'ईव' और उसके कथित माँ–बाप की पेशी का फरमान अदालत ने जारी कर दिया है। वैज्ञानिकों ने भी इस दावे को अहमियत ही नहीं है। उधर, इतालवी भ्रूणविज्ञानी सेवेरिनो एन्टीनरी अपनी धुन में मस्त एक अलग क्लोन कथा की रचना में जुटे हुए हैं। कौन जाने उनकी पेशकश किसी हौव्वे (ईव) के जन्म के बजाय सचमुच आदम के कलम (क्लोन) की ही हो। पर तब तक हमें इन्तजार करना होगा।

सचिव, भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति
भारद्वाजपुरम, इलाहाबाद–2

– राजीव सक्सेना

मानव क्लोन को लेकर एक बार फिर विवाद उठ खड़े हुए हैं। रेलियन सम्प्रदाय के षोध संस्थान 'क्लोनएड' से जुड़ी वैज्ञानिक ब्रिगिट बोसलिए ने पिछले दिनों क्लोनिंग की तकनीक के जरिए ईव नामक बालिका को जन्म देने की घोषणा कर दुनिया भर में सनसनी फैला दी है। यद्यपि उनके इस दावे की पुष्टि अभी तक नहीं हुई है, किन्तु वैज्ञानिक समुदाय और दुनिया भर के लोग पहले क्लोन–मानव के समाचार मात्र से ही रोमांचित हैं। लोगों में रोमांच या सनसनी उत्पन्न होने का प्रमुख कारण यह है कि यदि डी.एन.ए. टेस्ट के आधार पर सचमुच ब्रिगिट बोसलिए के प्रयोग की पुष्टि हो गई तो वह न केवल मानव जाति के इतिहास की सर्वाधिक युगांतरकारी खोज होगी बल्कि ब्रिजिट बोसेलियर सहित समूची मानव जाति स्वयं भी सृष्टिकर्ता के समकक्ष होने के अहंकार में भी जी सकेगी।

ज्ञात हो कि ब्रिगिट बोसलिए से पहले भी अमेरिकी वैज्ञानिक डाक्टर रिचर्ड सीड ने सरकारी प्रतिबंध के बावजूद मानव क्लोनिंग की तकनीक को विकसित कर विश्व समुदाय में उत्तेजना का वातावरण उत्पन्न कर दिया था। डाक्टर इयान विल्मुट ने क्लोनिंग के जरिए डाली नामक भेड़ को प्रयोगशाला में उत्पन्न कर न केवल एक स्वप्न को साकार कर दिखाया था, बल्कि मानव क्लोनिंग की संभावनाओं को बल प्रदान कर वैज्ञानिक परिकल्पना को नए पंख भी लगा दिए थे। मानव क्लोनिंग न केवल मनुष्य का एक चिर स्वप्न रहा है बल्कि विज्ञान गल्प (साइंस फिक्शन) का भी एक लोकप्रिय विषय रहा है। मानव क्लोनिंग के प्रति मानव जाति के लगाव का प्रमुख कारण यह है कि उसके अवचेतन में न केवल सृष्टिकर्ता बनने की महत्वाकांक्षा छिपी रही है बल्कि उसके मन में मृत्यु पर विजय प्राप्त कर अमरत्व की ओर अग्रसर होने की इच्छा भी बलवती रही है। डाक्टर बोसलिए के दावों का परिणाम चाहे जो भी हो, किंतु उनके प्रयोग ने मानव जाति के लिए अमरत्व की संभावनाओं के द्वार तो खोल ही दिए हैं। क्लोन शिशु ईव के जन्म को लेकर फिलहाल जो विवाद उठ खड़ा हुआ है, वह क्लोनिंग की तकनीक का खुलासा न किए जाने से संबंधित है। संभवतः इसके पीछे व्यावसायिक, धार्मिक, नैतिक अथवा अन्य दबाव हो सकते हैं, किंतु इतना निश्चित है कि जब तक बोसलिए की तकनीक की प्रायोगिक आधार पर पुष्टि नहीं हो जाती, तब तक मानव क्लोन को लेकर संदेह और विवादों की गुंजाइश बनी रहेगी।

मानव क्लोन ईव को लेकर सर्वाधिक विवाद रेलियन सम्प्रदाय के अगुवा क्लाड वोरिलहोन ने पैदा किया है। वीलहोन के सम्प्रदाय के विश्व भर में लगभग पचपन हजार अनुयायी हैं, जो स्वयं के मानव क्लोन होने का दावा करते हैं। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के विख्यात खगोलदिव डॉ0 फ्रेड हायल की मान्यता है कि धरती पर जीवन, विशेषकर मनुष्य जीवन का अवतरण वाह्य अंतरिक्ष से ही हुआ है। उनका यह कहना है कि जीवन एक चिर–प्रक्रिया है और यह महतो–महीयान ब्रह्माण्ड में सदैव विद्यमान रहती है।

डॉ0 हायल के अनुसार धरती पर जीवन की शुरुआत भी आदिम युग में, जब धरती अत्यंत तप्त आग का गोला थी, अंतरिक्ष से आने वाले धूमकेतुओं द्वारा बिखेरी गई जीवाणुयुक्त धूल से हुई है। इस तथ्य को

फ्रेड हायल ने अपने विश्वविख्यात 'कास्मिक पेनस्पर्मिया' सिद्धांत के माध्यम से प्रतिपादित किया है, जिसे अनेक जैवभौतिकविदों ने स्वीकार भी किया है। धरती पर जीवन अंतरिक्ष से आया है, इसका समर्थन केवल फ्रेड हायल ने ही नहीं बल्कि विख्यात विज्ञान लेखक एरिन वान डेनिकन ने भी किया है। लेकिन डेनिकन की मान्यता थोड़ी भिन्न है और यह क्लाड वीलहोन के ज्यादा करीब है। डेनिकन का कहना है कि धरती पर जीवन की शुरुआत अनायास नहीं हुई है। इसे सुदूर अतीत में अंतरिक्ष की विकसित सभ्यताओं अथवा बुद्धिमान प्राणियों ने एक सोची-समझी योजना के तहत विकसित किया था। दरअसल, मानवजाति अंतरिक्ष की बुद्धिमान सभ्यताओं द्वारा विकिसत किए गए जैव वैज्ञानिक प्रयोगों का परिणाम है। डेनिकन के अनुसार बाह्य अंतरिक्ष के बुद्धिमान प्राणी अपने वैज्ञानिक प्रयोगों का विकास देखने के लिए ही धरती पर आते रहते हैं और अक्सर दिखाई पड़ने वाली उड़नतश्तरियाँ या अजीब सी अज्ञात उड़न वस्तुएँ (यू.एफ.ओ.) दरअसल उन्हीं के अंतरिक्ष यान हैं। डेनिकन की दृढ़ मान्यता है कि मानव जाति क्लोनिंग का ही परिणाम है। उन्होंने अपने तर्क के समर्थन में जैक्स मोनाड की विश्व प्रसिद्ध कृति 'चांस एण्ड नेसेसिटी' को उद्धृत किया है और अपनी विश्व प्रसिद्ध पुस्तकश्रृंखला के जरिए इसे प्रचारित भी किया है। मोनाड ने तर्कपूर्ण ढंग से सिद्ध किया है कि मानवजाति की उत्पत्ति वास्तव में अनायास हुए संयोगों का ही परिणाम नहीं है बल्कि सृष्टिकर्ता द्वारा वास्तव में सोच-समझ कर किए गए वैज्ञानिक प्रयोग का सुफल है। अब यह सृष्टिकर्ता वास्तव में कौन है ? वह जिसका वर्णन भगवान या एक अतिमानवीय शक्ति अथवा सर्वशक्तिमान के रूप में विश्व के समस्त पौराणिक आख्यानों में मिलता है अथवा बाह्य अंतरिक्ष के अतिबुद्धिमान प्राणी ? यही सबसे बड़ा प्रश्न है और मानव जाति को इसी प्रश्न का हल ढूँढना है। मानव क्लोनिंग को लेकर जो दूसरा विवाद है, वह मुख्यतया इसके धार्मिक अथवा नैतिक पक्ष से जुड़ा है।

रोमन कैथोलिक चर्च तो मानव क्लोनिंग को शैतानी कृत्य करार दे चुका है। स्वयं पोप ने ब्रिगिट बोसलिए के प्रयोग की निदां की है। अमेरिकी राष्ट्रपति बुश भी इसके खिलाफ हैं और अमेरिका में तो बाकायदा कानून बनाकर मानव क्लोनिंग को प्रतिबंधित किया जा चुका है। दूसरे देशों में भी मानव क्लोनिंग को प्रतिबंधित किया जा चुका है। मानव क्लोनिंग की धार्मिक-नैतिक आधार पर भर्त्सना अथवा प्रतिबंधों का मुख्य कारण यही है कि चर्च इसे सृष्टिकर्ता यानी भगवान के कार्यों में हस्तक्षेप मानता है और इसे प्राकृतिक विधान के प्रतिकूल समझता है जबकि नैतिकतावादियों का आग्रह है कि महज चिकित्सकीय कारणों से या अंगों के प्रत्यारोपण की दृष्टि से मानव क्लोन को जन्म देना न केवल घोर स्वार्थपरता है बल्कि जीव हत्या सदृश अपराध भी है। सभ्य समाज की मान्यता है कि मानव क्लोनिंग एक व्यक्ति को जीवित रखने के लिए दूसरे की हत्या है और यह काफी हद तक बर्बरता या अमानुषिकता है।

दूसरी ओर वैज्ञानिकों का कहना है कि मानव क्लोनिंग तकनीक का विकास न केवल चिकित्सा विज्ञान या शल्यक्रिया की दृष्टि से महत्वपूर्ण है बल्कि भविष्य में आवश्यकता होने पर किसी भी व्यक्ति को अल्पकालावधि में जीवित करने, रोगों और मृत्यु पर विजय पाने की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। शायद यूँ ही विश्व की कतिपय प्रयोगशालाओं में नोबेल विजेताओं, वैज्ञानिकों, लेखकों या ख्यातिप्राप्त व्यक्तियों के शुक्राणुओं, रक्त कोशिकाओं अथवा डी.एन.ए. के नमूने संरक्षित नहीं किए जा रहे हैं। यह भी एक तथ्य है कि अमेरिका में प्रतिबन्ध के बावजूद चोरी छिपे अथवा सरकार की शह पर विभिन्न प्रयोगशालाओं में मानव क्लोनिंग के प्रयोग जारी हैं। विश्वविख्यात मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलाजी में इस तरह के प्रयोगों की अफवाहें पहले भी कई बार फैल चुकी हैं। क्लोनिंग पर विवाद केवल धार्मिक अथवा नैतिक पक्ष को लेकर ही नहीं बल्कि इसके कानूनी पक्ष को लेकर भी है। मसलन, एक व्यक्ति जो वर्षों या सदियों पहले मर चुका है, यदि वैज्ञानिक उसे क्लोनिंग के जरिए जीवित कर लेते हैं तो समकालीन समाज में उसकी विधिक हैसियत क्या होगी ? क्लोन को मूल व्यक्ति का पुत्र माना जाएगा, सहोदर अथवा समकक्ष ? दूसरे लोगों के साथ उसके रिश्ते-नाते क्या होंगे ? फिर एक प्रश्न यह भी है कि क्लोन की उपयोगिता समाप्त होने पर उसे जीवित रहने दिया जाएगा अथवा नष्ट कर दिया जाएगा ?

- साभार

क्लोनिंग
हानि–लाभ तथा प्रतिक्रियाएँ

– डॉ० रमेश बाबू

क्लोनिंग सामान्यतः एक डिंब और शुक्राणु के बाद बने जाइगोट को दो भागों में बाँट कर अलग–अलग विकसित किए जाने की प्रक्रिया है। इस विधि से उत्पन्न शिशु अथवा जीव उस व्यक्ति/जीव की कार्बन कापी (हमशक्ल) होता है जिसका डी. एन.ए. डिंब में डाला जाता है। अब तक दुनिया के विभिन्न वैज्ञानिकों ने कई जीव–जन्तुओं पर क्लोनिंग की है लेकिन कोई भी जीव वयस्क अवस्था तक नहीं पहुँचा।

फरवरी 1997 में इंग्लैंड के वैज्ञानिक डॉ0 विल्मुट ने 'डॉली' नामक भेड़ उत्पन्न करके सनसनी पैदा कर दी, क्योंकि डॉली जीवित रही तथा वयस्क होने पर उसने सामान्य जीवन जिया। इसके पश्चात् तो क्लोन बनाने के दरवाजे, अन्य पशुओं यहाँ तक कि मनुष्य के लिए भी खुल गए। 26 दिसंबर 2002 को क्लोनएड संगठन ने पहली मानव क्लोन बच्ची 'ईव' के जन्म की घोषणा की। पहले क्लोन शिशु के पैदा होने की खबर के साथ ही दुनिया में इस मुद्दे पर बहस छिड़ गई है। क्लोनिंग की तकनीक को परमाणु बम की तरह ही अनैतिक और विध्वंसकारी माना जा रहा है। अमेरिका के अधिकांश लोगों ने क्लोनिंग को अनुचित करार दिया है।

चित्र- मानव क्लोनिंग की प्रक्रिया
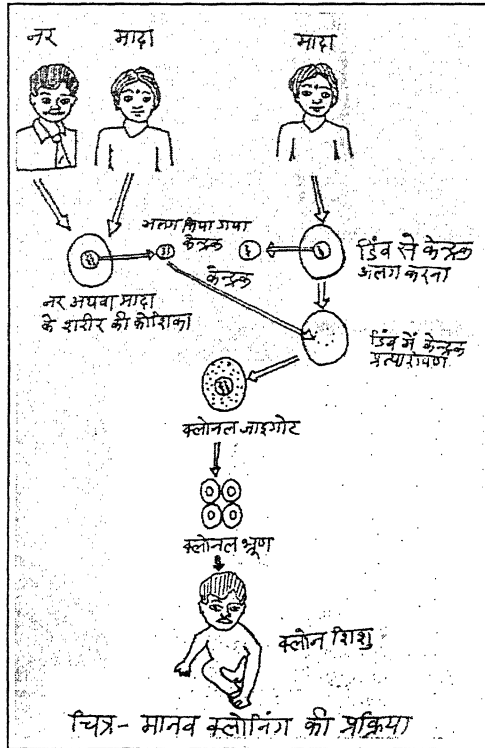
क्लोनिंग के लाभ

1. रॉयल व पानासेजावोस जैसे जाने–माने वैज्ञानिकों का मानना है कि क्लोनिंग से मानव की बढ़ती उम्र की प्रक्रिया को रोका जा सकता है। वृद्धावस्था से युवावस्था में लौटना संभव हो सकेगा।

2. क्लोनिंग का उपयोग कर ऐसी महिलाएं भी माँ बन सकती हैं जिनके एक समय में एक ही डिंब होता है।

3. क्लोनिंग हृदय के मरीजों, कैंसर रोगियों, निःसंतान दम्पत्तियों के लिए वरदान साबित होगी।

4. विलुप्त होने के कगार पर पहुँचे जीव–जन्तुओं की प्रजातियों को भी बचाया जा सकेगा।

5. भ्रूण क्लोनिंग के द्वारा विकसित होने वाली कलम कोशिकाओं का उपयोग कर न सिर्फ कई लाइलाज बीमारियों से बचा जा

शेष पृष्ठ 24 पर

[illegible] विकास

[illegible] है इंसान के [illegible]?

– डॉ0 कृष्ण कुमार मिश्र

दिखने वाली हर सजीव वस्तु जरूरी नहीं है कि हमेशा से ऐसी रही हो। बहुत संभव है कि वह विकास के लंबे सोपानों से गुजरते हुए आज के मौजूदा स्वरूप को प्राप्त हुई हो। जीवधारियों के इसी विकास को जैवविकास कहते हैं। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक इंग्लैण्ड के चार्ल्स डार्विन थे। विकासवाद पर लिखी गई उनकी पुस्तक 'आन दि ओरिजिन आफ स्पिसीज' जब 1859 में प्रकाशित हुई तो लोगों को एक झटका सा लगा। इंग्लैण्ड के पादरियों द्वारा इसका पुरजोर विरोध हुआ। ऐसा इसलिए क्योंकि उस समय दुनिया के तत्कालीन समाज में धार्मिक मत का प्राबल्य था। सामाजिक जीवन में पंडितों, पुजारियों, मुल्लाओं–मोमिनों तथा पादरियों की बातें ही सत्य तथा अंतिम मानी जाती थीं। उनके कथन पर किसी तरह के सवालिया निशान को धर्मविरोधी कृत्य ही नहीं, बल्कि संज्ञेय अपराध माना जाता था।

ईसाइयत में यह मान्यता है कि सृष्टि परमसत्ता यानी ईश्वर का अवदान है। मनुष्य सभी जीवों में इसलिए श्रेष्ठ है क्योंकि उसे स्वयं ईश्वर ने बनाया है। इस तरह की धार्मिक मान्यताएँ केवल ईसाई धर्म तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि इससे मिलती–जुलती धारणाएँ दुनिया के दूसरे मजहबों में भी दृष्टव्य हैं। धार्मिक मान्यताओं में अकसर लोगों का दृढ़ विश्वास होता है। इसलिए धर्म से मेल न खाने वाली बातों का प्रचण्ड विरोध होना स्वाभाविक है। तत्कालीन इंग्लैण्ड में भी यही हुआ। डार्विन का कहना था कि मनुष्य पहले बंदर जैसा था। समय के साथ वह बदला, उसमें कई शारीरिक, मानसिक और अंदरूनी संरचना के स्तरों पर परिवर्तन हुए, और आज वह अपने मौजूदा स्वरूप में है। उनका यह भी कहना था कि धरती पर मनुष्य का आगमन बहुत हाल की घटना है। मानव के इस धरती पर आने से पहले यहाँ अपेक्षाकृत कम विकसित प्राणियों की अनेकानेक प्रजातियाँ रहती रहीं हैं।

भूभौतिक समय–सारणी के अनुसार वास्तव में मनुष्य को धरती पर आए अभी लगभग पचास लाख वर्ष
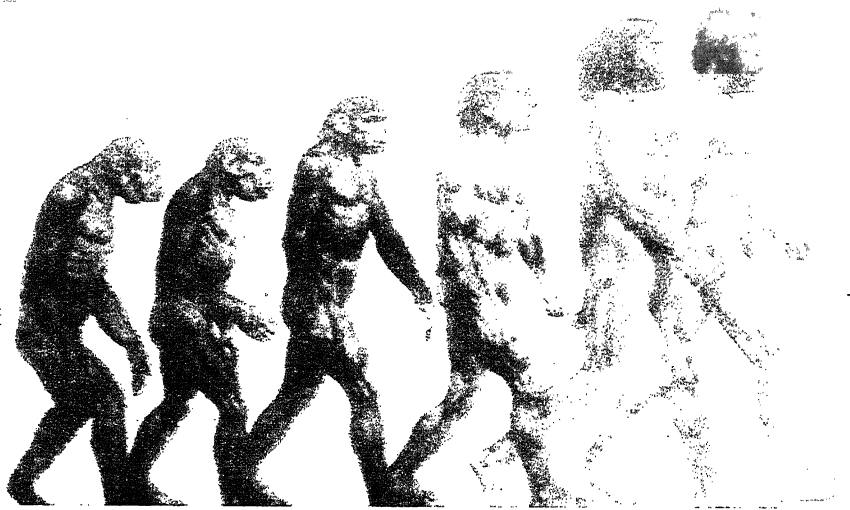
ही हुए हैं। यह धरती पर प्रथम जीव के आगमन काल की तुलना में बिल्कुल ताजी घटना है। ऐसा इसलिए कि सबसे पहला एककोशिकीय प्राणी आज से लगभग साढ़े तीन सौ करोड़ वर्ष पहले अवतरित हुआ था। सर्वप्रथम एककोशिकी प्राणी ही धरती पर आए। इनमें जीवाणु, विषाणु, अमीबा, नीलहरित शैवाल तथा सरल कवकों के नाम लिए जा सकते हैं। इन्हीं से धीरे–धीरे समय के साथ बहुकोशिकीय प्राणियों का विकास हुआ। शोधकर्ताओं के मनुष्य जैसे जीव इन्हीं सरल एककोशिकीय प्राणियों की विकास यात्रा की देन है। लेकिन यह सब होने में करोड़ों साल का समय लगा है। ऐसा प्रकृति और प्राणी के बीच अन्योन्यक्रिया के कारण होता है। जीवधारियों में होने वाले इसी बदलाव को जैवविकास कहते हैं। यह विकास सभी जीव–जन्तुओं और पेड़–पौधों के साथ होता रहा है और आज भी जारी है।

ध्यान देने की बात है कि यह विकास बहुत धीमा होता है इसलिए किसी मनुष्य के लिए खुद उसके संक्षिप्त से जीवनकाल में इसका अनुभव कर पाना संभव नहीं है। प्रकृति परिवर्तनशील है अतः किसी जीव के लिए बदलती प्राकृतिक स्थितियों से तालमेल बिठाना जरूरी होता है यानी जीवों में भी बदलाव वांछित होता है। इसलिए प्रकृति के साथ जीव भी खुद को ढालते हैं। यह स्वतः कई स्तरों पर होता है। इस तरह जीव अपने लिए अनुकूलन खोज लेता है लेकिन जो जीव वांछित बदलाव नहीं ला पाते, वे अपना अस्तित्व कायम नहीं रख पाते और नष्ट हो जाते हैं। वातावरण में सिर्फ वही अपना अस्तित्व बनाए रख सकता है जो प्रकृति के साथ है। प्रकृति उसे ही चुनती और जीवित रहने देती है जो उसके अनुकूल है। यही प्रसिद्ध 'प्राकृतिक वरण' (नेचुरल सेलेक्शन) का सिद्धान्त है। ऐसे सिद्धान्तों के प्रतिपादक डार्विन की पुस्तक का न केवल बहिष्कार किया गया बल्कि उस पर प्रतिबंध भी लगा दिया गया। यह विरोध मात्र इंग्लैण्ड या यूरोपीय देशों तक ही सीमित नहीं था, बल्कि अमेरिका तक में इसका विरोध हुआ। सन् 1920 में अमेरिका के कई प्रान्तों ने बाकायदा कानून बनाकर जीवविज्ञान के अध्यायों से विकासवाद के सिद्धान्तों को बाहर कर दिया क्योंकि यह धार्मिक मर्यादा के प्रतिकूल था।

मानव का भी विकास हुआ है। वह हमेशा से आज जैसा नहीं था। पहले का मानव आदिमानव कहा जाता है। वह सभ्यता और संस्कृति के सरोकारों से दूर कंदराओं में वास करता था। इस बात के अनेकानेक प्रमाण हैं– जैसे खुदाई से प्राप्त होने वाले जीवाश्म तथा आज के मनुष्य के अवशेषी अंगों की उपस्थिति। अवशेषी अंग वे अंग हैं जो न्यूनाधिक रूप से आज भी मौजूद हैं लेकिन उनकी कोई उपादेयता नहीं है। पुच्छ कशेरुक, निमेषक पटल, कृमिरूप परिशेषिका इनमें उल्लेखनीय हैं। पुच्छ कशेरुक से साबित होता है कि विगत में मनुष्य के दुम थी जबकि निमेषक पटल से कभी उसके जलचर रहे होने का प्रमाण मिलता है। कृमिरूप परिशेषिका से उसके सेलुलोसभोजी होने की बात सामने आती है। उसी तरह से मनुष्य में प्राप्त रदनक दाँत से संकेत मिलता है कि एक समय वह मांसाहारी था इसलिए उसके दाँत काफी बड़े और नुकीले थे।

प्राणिविज्ञान में वर्गीकरण के अनुसार मनुष्य एक होमिनिड है जो फैमिली होमिनिडी का सदस्य है। होमिनिडी में मनुष्य की वर्तमान सभी प्रजातियों तथा आज के कपियों के साथ उनके उभयनिष्ठ पूर्वज भी आते हैं। होमिनिडी कपियों की सुपरफैमिली होमिनॉयडी में समाहित है। होमिनॉयडी के सदस्य होमिनॉयड्स कहलाते हैं। पहले ऐसा माना जाता था कि करीब एक करोड़ पचास लाख से लेकर दो करोड़ वर्ष पहले तक या यहाँ तक कि 3 या 4 करोड़ वर्ष पहले मनुष्य और कपियों के बीच विभाजन हुआ। समकालीन कपियों, जैसे कि रामापिथेकस की शोध से सिद्ध हुआ कि विभाजन दरअसल उतना प्राचीन नहीं है। नए अनुमान के अनुसार यह अलगाव करीब 50 लाख वर्ष पूर्व के आसपास की बात है इसलिए रामापिथेकस होमिनिड नहीं हैं।

प्राचीनता के हिसाब से कुछ अवशेषों का उल्लेख आवश्यक है। मध्य अफ्रीका के देश चाड से प्राप्त एक जीवाश्म को जुलाई, 2002 में सहेलेंथ्रोपस चाडेंसिस कहा गया जो करीब 60 से 70 लाख वर्ष

प्राचीन है। इसे करीब करीब एक होमिनिड कहा जा सकता है। मस्तिष्क का आयतन करीब 350 सेमी^{3} था। इसमें आदिम कपियों के कई लक्षण थे इसलिए कुछ लोग इसे होमिनिड नहीं भी मानते। इसके बाद आस्ट्रैलोपिथेकस अफरेंसिस की बारी आती है। इसके अवशेष को प्रसिद्ध जीवविज्ञानी मैरी लीकी ने 1959 में तंजानिया में खोज निकाला था। वह आज से 39 लाख से 30 लाख वर्ष के मध्य अस्तित्व में था। इसका चेहरा कपि जैसा था, ठुड्डी नहीं थी तथा नाक चपटी थी, मस्तिष्क करीब 350–550 सेमी^{3} था। इसका सिर चिंपांजी जैसा ही था लेकिन दाँत मानव–सदृश थे। कूल्हे और पांव आज के इंसान जैसे थे। वे दोनों पैरों पर खड़े होकर थोड़ा आगे की ओर झुककर चलते थे। उनकी शारीरिक ऊँचाई 107 सेमी से 150 सेमी थी उसकी अंगुलियाँ अपेक्षाकृत लम्बी और मुड़ी थीं। इसलिए कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि वे उस समय भी पेड़ों पर चढ़ने के अनुकूल थे। चार्ल्स हैकेट के अनुसार सही अर्थों में यह पहला होमिनिड था।

होमिनिड के चार विशेष लक्षण थे। अत्यधिक कुशल मस्तिष्क, यथातथ्य भाषा, चपटा चेहरा और उच्चारण संबंधी निपुणता। इन्हीं गुणों ने उसे कपियों से अलग किया। इसके बाद बारी आती है आस्ट्रैलोपिथेकस अफ्रिकानस की। इसे सबसे पहले 1924 में रेमण्ड डार्ट ने खोजा था। ये मनुष्य 30 लाख से लेकर 20 लाख वर्ष पूर्व निवास करते थे। ये अफरेंसिस के समान थे। शरीर का आकार जरा बड़ा था। मस्तिष्क का आकार भी थोड़ा बड़ा था और आज के चिंपांजी से अधिक था। लेकिन बोलने के अंगों के मामले में अभी भी खूब विकसित नहीं था। इसके बाद रहने वाली प्रजाति थी आस्ट्रैलोपिथेकस इथियोकस जो 26 से 23 लाख पूर्व थी। इसमें आदिम और परिष्कृत लक्षणों का साम्य था। इनके बाद में आस्ट्रैलोपिथेकस रोबस्टस आते हैं जो अनुमानतः आज से 20 लाख से लेकर 15 लाख साल पूर्व थे। इनका चेहरा बड़ा, ललाटहीन तथा भौंह का उभार बड़ा था। इनका आहार संभवतः कच्चा भोजन ही रहा होगा क्योंकि इनके चबाने के दाँत बहुत बड़े थे। तत्पश्चात् होमो हैबिलिस आते हैं। इनके अवशेषों के पास औजार भी मिले हैं। इससे अनुमान लगाया जाता है कि ये कुशल शिकारी थे। ये 24 से 15 लाख साल पूर्व रहे थे। चेहरा अभी भी आदिम था। गुणों में ये आस्ट्रैलोपिथेकस से मेल खाते थे। औसत मस्तिष्क 650 सेमी^{3} था जो अपनी पूर्व प्रजातियों से कुछ ज्यादा था तथा मनुष्य सदृश था। वाक्‌यंत्रों से लगता है कि ये थोड़ा बहुत बोल लेते थे। होमो इरेक्टस आज से 18 लाख से लेकर 3 लाख साल वर्ष पूर्व रहते थे। मस्तिष्क का आकार 750 से लेकर 1225 सेमी^{3} था। ये बिल्कुल सीधे खड़े होकर चल सकते थे। इनका शरीर बहुत सुगठित और मजबूत था। इनके अवशेष अफ्रीका, एशिया तथा यूरोप में मिले हैं। इनमे बाद होमोसैपिएन्स आते जिनका काल आज से करीब 5 लाख वर्ष पूर्व माना जाता है। इनमें होमोइरेक्टस तथा आधुनिक मनुष्य के गुणों का मिश्रण मिलता है। मस्तिष्क इरेक्टस से ज्यादा विकसित था लेकिन आज के मानव से कम परिष्कृत था। इनके बाद आते हैं होमोसैपिएन्स निएन्डरथलेंसिस या होमो निएन्डरथलेंसिस, जो 230000 से लेकर 30000 वर्ष पूर्व थे। वे औजार और शिल्प की योग्यता वाले थे। ये अच्छे शिकारी थे तथा शारीरिक शक्ति में आज के मनुष्य से बेहतर थे। इनके बाद अन्त में आते हैं आधुनिक मानव यानी होमोसैपिएन्स सैपिएन्स। ये पहली बार आज से 120000 वर्ष पूर्व उत्पन्न हुआ। उठा हुए माथा, विकसित मस्तिष्क, भौंह का उभार बहुत ही कम, ठुड्डी और कंकाल बहुत ही शानदार। इस तरह से आज के मनुष्य को इस रूप में आने में लाखों वर्षों का सफर तय करना पड़ा है।

पुराजीवाश्मविदों का कहना है कि मानव एवं कपि, जैसे गोरिल्ला, गिब्बन, चिंपांजी वगैरह आज से छह करोड़ वर्ष पहले पेड़ पर रहने वाले एक गिलहरी जैसे प्राणी से विकसित हुए। उसके वंशवृक्ष से आदिमानव के अलावा कपि और बंदरों की शाखाएँ भी बनीं। आदिमानव कपियों से ज्यादा मिलते–जुलते प्राणी थे। आज से लगभग एक करोड़ वर्ष पहले तक इनकी यात्रा अकेली थी। लेकिन कालान्तर में मनुष्य ने कपियों और बंदरों को पीछे छोड़ते हुए तेज उन्नति की। समय के

शेष पृष्ठ 48 पर ......

भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक द्वारा दुग्ध विकास

डॉ० चन्द्र शेखर चौबे एवं डॉ० शीतला प्रसाद वर्मा

हम भले ही दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में विश्व में प्रथम स्थान पर पहुँच गए हैं, परन्तु प्रति पशु उत्पादन की दृष्टि एवं प्रति व्यक्ति प्रतिदिन दूध उपलब्धता के हिसाब से हमारी स्थिति अभी भी चिन्ताजनक है। देश में गायों और भैंसों की इतनी विशाल संख्या को ध्यान में रखते हुए यदि अपने. दुग्ध उत्पादन पर विचार करें तो हमारे पशुपालन की दशा अत्यन्त शोचनीय दिखती है। हम 21वीं सदी की चुनौतियों का समाधान उत्तम नस्ल के पशुओं एवं उनके वैज्ञानिक पोषण एवं प्रबन्ध तथा उनके अच्छे स्वास्थ्य से ही कर सकते हैं। यदि इन चारों कारकों पर विचार किया जाए तो हम पाते हैं कि यदि पहला कारक यानी केवल उत्तम नस्ल के अधिकाधिक संख्या में पशु ही उपलब्ध करा दिए जाएँ तो काफी हद तक हमारी समस्याएँ सुलझ सकती हैं। अधिक संख्या में उत्तम नस्ल के पशु किसानों/पशुपालकों को प्राप्त हो सकें, इसके लिए जो सर्वोत्तम रास्ता है : वह है भ्रूण प्रत्यारोपण।

भ्रूण प्रत्यारोपण

भ्रूण प्रत्यारोपण में एक मादा पशु के गर्भाशय से भ्रूण निकालकर दूसरे मादा पशु के गर्भाशय में प्रत्यारोपित किया जाता है। इस तकनीक में अतिविशिष्ट नस्ल की गाय के भ्रूण का संकलन कर संकलित भ्रूण को एक देशी गाय के गर्भाशय में प्रत्यारोपित किया जाता है। इस प्रकार उत्पन्न होने वाले बछड़े या बछिया में श्रेष्ठ नस्ल के आनुवंशिक गुण स्थानान्तरित होते हैं। इस प्रक्रिया में अतिविशिष्ट नस्ल के साँड से कृत्रिम गर्भाधान कराया जाता है, और गर्भित पशु के भ्रूण दूसरी अन्य सामान्य गायों में प्रत्यारोपित किए जाते हैं। भ्रूणदाता गाय से एक मदकाल में एक भ्रूण के स्थान पर 5–6 या उससे अधिक संख्या में भ्रूण प्राप्त किए जा सकते हैं। भ्रूणदाता गाय में हार्मोनों के टीके लगाकर उनका डिम्बक्षरण कराया जाता है। ऐसी प्रक्रिया से एक वर्ष में आसानी से 10–15 बच्चे तक प्राप्त किए जा सकते हैं।
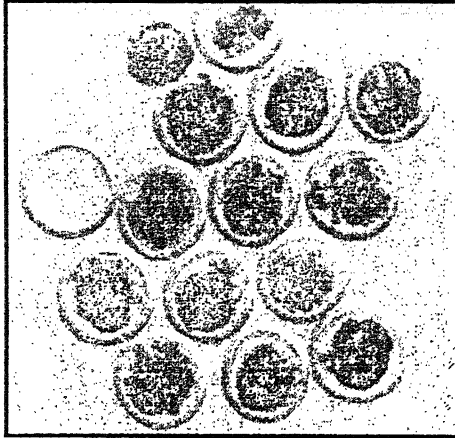
नेशनल इंस्टीट्यूट आफ इम्यूनोलाजी, नई दिल्ली में भ्रूण प्रत्यारोपण की प्रथम संतति जनवरी 1987 में पैदा हुई। इसी संस्था में मार्च 1988 में प्रथम अतिहिमीकृत भ्रूण प्रत्यारोपण संतति पैदा हुई। उत्तर प्रदेश में ग्रामीण स्तर पर इस तकनीक द्वारा प्रथम संतति 'बागवाला दुग्ध सहकारी समिति' ऊधमसिंह नगर के सौजन्य से नवम्बर 1991 में उत्पन्न हुई। (ऊधम सिंह नगर अब उत्तरांचल राज्य में है)। सर्वप्रथम

परखनली विधि से तैयार भ्रूण को भैंस में प्रत्यारोपित करके बच्चा पैदा करने में वर्ष 1990 में राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा को सफलता प्राप्त हुई।

भ्रूण प्रत्यारोपण विधि

भ्रूण प्रत्यारोपण की प्रक्रिया में सर्वप्रथम दाता पशु का चयन दुग्ध उत्पादन एवं उच्च प्रजनन क्षमता के आधार पर कर लेते हैं। तत्पश्चात् रेसीपियेन्ट (पालक) पशुओं का चयन करते हैं। पालक पशु (गाय/भैंस) पूर्ण स्वस्थ तथा सामान्य ऋतु चक्र का होना चाहिए। दाता पशु को हार्मोनों के इंजेक्शन लगाकर उसमें बहुडिम्बक्षरण कराया जाता है जिससे डिम्बग्रन्थि से एक से अधिक अण्डे उत्पन्न हो सकें। बहुडिम्ब क्षरित दाता गाय में बहुत अच्छे साँड़ के वीर्य से थोड़े थोड़े अन्तराल पर तीन बार कृत्रिम गर्भाधान कराया जाता है। दाता गाय में कृत्रिम गर्भाधान करने के सात दिन बाद, दाता गाय के जननांगों से भ्रूण निकाल लिए जाते हैं। भ्रूणों को निर्धारित बफर मीडिया में सुरक्षित किया जाता है। इन संकलित भ्रूणों का सूक्ष्मदर्शी द्वारा परीक्षण कर वांछनीय सामान्य भ्रूणों को 10 घंटे तक निर्धारित ताप पर पुनः बफर मीडिया में रखते हैं और यदि इनका उपयोग तुरन्त न करना हो तो तरल नाइट्रोजन में भविष्य के उपयोग हेतु संचित कर लेते हैं। इस प्रकार तैयार भ्रूणों को रेसीपियेन्ट (पालक) गाय/भैंस (जिनमें कि ऋतुकाल/मदकाल चल रहा हो) में प्रत्यारोपित कर देते हैं। भ्रूण प्रत्यारोपण के दो माह पश्चात् पालक पशु का गर्भ परीक्षण किया जाता है।

लाभ

भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके अनेकानेक लाभ हैं। सामान्यतः एक गाय अपने जीवनकाल में 5–8 बच्चे उत्पन्न करती है। लेकिन इस तकनीक में एक दाता गाय से अधिकाधिक भ्रूण प्राप्त कर एक वर्ष में ही 5–10 उन्नतशील नस्ल के बच्चे प्राप्त किए जा सकते हैं जिससे अतिविशिष्ट दाता पशु में विद्यमान उच्च आनुवंशिक गुणों का विस्तार बहुत तेजी से किया जा सकता है। इस तकनीक द्वारा साँड़ के आनुवंशिक गुण–दोषों की पहचान की जा सकती है।

बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में ईजाद हुई यह तकनीक पहले तो प्रयोगशालाओं और संगठित पशुफार्मों तक ही सीमित रही परन्तु यदि वास्तव में हमें पशुधन विकास में तेजी लानी है, प्रति पशु उत्पादन सुधारना है तथा देशवासियों के पोषण हेतु दुग्ध उपलब्धता/व्यक्ति/दिन में यथाशीघ्र बढ़ोत्तरी करनी है तो भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक को इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण में ही गाँव–गाँव तथा प्रत्येक पशु तक पहुँचाना पड़ेगा। देश के पशु चिकित्सालयों में कार्यरत विशेषज्ञों को अल्पावधि का उत्कृष्ट प्रशिक्षण प्रदान करके चिकित्सालयों में तरल नाइट्रोजन की आपूर्ति को भी सुधारना पड़ेगा, क्योंकि वर्तमान में तरल नाइट्रोजन आपूर्ति की स्थिति यह है कि इसके अभाव में अधिकांश सरकारी पशुचिकित्सालयों में रखे गए अति हिमीकृत वीर्य की गुणवत्ता नष्ट हो चुकी है। पशुपालन कार्यों में संलग्न किसानों को भी भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक के प्रति जागरूक करना पड़ेगा।

प्रवक्ता
पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान
कुलभास्कर आश्रम महाविद्यालय
इलाहाबाद

चक्रवात तथा उससे बचने के उपाय

एन.के. चंचलानी, एम. महापात्र एवं डी.सी. गुप्ता

20वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में वैज्ञानिकों तथा जनसाधारण में मौसम से सम्बन्धित प्राकृतिक विपदाओं का विषय काफी चर्चा का विषय रहा। 1990 का दशक समग्र विश्व में प्राकृतिक विपदाओं में ह्रास का अंतर्राष्ट्रीय दशक के रूप में मनाया गया। भले ही दिन–प्रतिदिन के मौसम के बदलाव में विशेष अनुभव न किया जाता हो परन्तु चक्रवात, निम्न दबाव के क्षेत्र, बाढ़, सूखा, लू तथा शीत लहर इत्यादि प्राकृतिक विपदाओं ने सामाजिक जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है एवं जान मान की क्षति पहुँचाई है। ओड़िसा तथा पड़ोसी तटीय क्षेत्रों में प्राकृतिक विपदाओं की श्रृंखला में चक्रवात ही सबसे प्रमुख रहा है। 1941 से 1980 तक सभी प्रकार की प्राकृतिक विपदाओं में उष्ण देशीय चक्रवात जो कि हरीकेन तथा टाइफून के नाम से भी जाना जाता है सबसे अधिक विनाशकारी एवं जानलेवा सिद्ध हुआ है (हॉटन, 1997)। पिछली शताब्दी का सर्वाधिक विनाशकारी बंगलादेश को प्रभावित करने वाला चक्रवात था जिसने सन् 1970 में 2,50,000 लोगों की जान ली। सन् 1885 का चक्रवात जो ओड़िसा तट को फाल्स पाइण्ट द्वीप के समीप पार कर सितम्बर 1885 में ओड़िसा को क्षतिग्रस्त करने वाले प्रलयकारी चक्रवात के बाद 29–30 अक्टूबर 1999 के पारद्वीप के समीप ओड़िसा तट पार करने वाला महा चक्रवात पिछले 114 वर्षों में ओड़िसा तट को क्षतिग्रस्त करने वाला सर्वाधिक विनाशकारी चक्रवात था (महापात्र एवं अन्य, 2000) जिसमें वायु की गति 260 से 280 किमी0 थी एवं जिसने 10,000 लोगों की जान ली। पिछले 100 साल में यह चक्रवात बंगाल की खाड़ी में उत्पन्न होने वाले चक्रवात में सर्वाधिक विनाशकारी रहा। ऐसा ही चक्रवात 1971 में ओड़िसा तट को पारद्वीप के समीप पार करके क्षतिग्रस्त कर चुका था जिसमें वायु की उच्चतम गति 180 किमी प्रतिघंटा थी। 29 अक्टूबर 1999 के महाचक्रवात के पूर्व 18 अक्टूबर 1999 को एक अति भीषण चक्रवात ओड़िसा के दक्षिणी तट को गोपालपुर के समीप पार करके पहले ही क्षतिग्रस्त कर चुका था जिसमें मृतकों की संख्या 300 के आसपास घोषित की गई। इस तरह ओड़िसा तट को 1999 में अक्टूबर माह में एक पखवाड़े में दो चक्रवातों का सामना करना पड़ा।
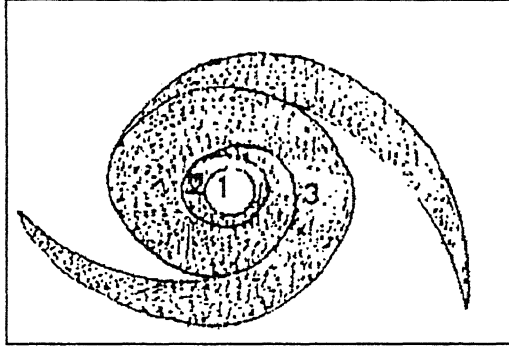
चक्रवात की परिभाषा एवं प्रकार

चक्रवात को जैसा कि उसके नाम से ही स्पष्ट है कि उसमें निहित चक्रवाती हवाओं के कारण ही यह नाम दिया गया है। अंग्रेजी में इसे साइक्लोन (Cyclone) के नाम से जाना जाता है जो ग्रीक शब्द

साइक्लोस से निकला जिसका अर्थ होता है साँप की कुण्डली। चक्रवात में साँप की कुण्डली के अनुसार हवाएं घूमती हैं। चक्रवात विश्व के विभिन्न देशों में अलग अलग नामों से जाना जाता है यथा अटलांटिक महासागर में 'हरीकेन', प्रशान्त महासागर में 'टाइफून' दक्षिणी प्रशान्त महासागर में 'विल्ली–गिल्ली' तथा हिन्द महासागर में 'साइक्लोन' (चक्रवात)। जो चक्रवात उष्ण देशीय क्षेत्रों में निर्मित होते हैं उन्हें उष्ण कटिबंधीय चक्रवात (ट्रॉपिकल साइक्लोन) कहते हैं तथा अन्य क्षेत्रों में बनने वाले चक्रवात को अतिरिक्त उष्ण कटिबंधीय चक्रवात (एक्स्ट्रा ट्रॉपिकल साइक्लोन) कहते हैं। साधारण शब्दों में चक्रवात घुमावदार कम दबाव का क्षेत्र है जिसके केन्द्र में 5–6 हेक्टा पासकल (मिलीबार) तक वायु दाब में गिरावट हो जाती है तथा चारों तरफ हवा की गति अंततः 34 नॉटिकल मील अथवा 62 किमी0 प्रतिघंटा हो जाती है। निम्न दबाव क्षेत्र से उत्पन्न होने वाली विभिन्न मौसम प्रणालियों से संबंधित उच्चतम हवा की गति के आधार पर प्रणालियों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया गया है :

क्रम	*हवा की गति (नाटिकल मील/घंटा)*	*श्रेणी*
1.	17 से कम	निम्न दबाव का क्षेत्र
2.	17 से 27	अवदाब (डिप्रेशन)
3.	28 से 33	गहरा अवदाब (डिप्रेशन)
4.	34 से 47	चक्रवात
5.	48 से 63	भीषण चक्रवात
6.	64 से 119	अति भीषण चक्रवात
7.	120 एवं उससे अधिक	महाचक्रवात (सुपर साइक्लोन) (1 नॉटीकल मील–1.85 किमी0)

उपर्युक्त वर्गीकरण भारत मौसम विज्ञान विभाग द्वारा बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर में बनने वाले विभिन्न तीव्रता वाले निम्न दबाव के क्षेत्रों के लिए अपनाया जाता है तथा विश्व मौसम संगठन द्वारा मान्य है।

चक्रवात की बारम्बारता

प्रतिवर्ष विश्व में लगभग 80 चक्रवात बनते हैं जबकि बंगाल की खाड़ी एवं अरब सागर में चक्रवात की वार्षिक संख्या 4 से 6 है जिसमें 2 या 3 भीषण चक्रवात की स्थिति तक पहुँच जाते हैं। साधारणतः चक्रवात वर्षा ऋतु (दक्षिण पश्चिम मानसून) के पूर्व (मार्च–अप्रैल–मई) तक पश्चात् (अक्टूबर–नवम्बर–दिसम्बर) माह में बनते हैं। वर्षा ऋतु में निम्न दबाव के क्षेत्र अवदाब तथा गहरे अवदाब की स्थिति तक पहुँच जाते हैं। सन् 1949 से 1999 के दौरान लगभग 23 चक्रवात ओड़िसा तट को बालासौर एवं गोपालपुर के मध्य पार कर क्षतिग्रस्त कर चुके हैं। साधारणतः पिछले 100 साल में लगभग 1 चक्रवात ने प्रतिवर्ष ओड़िसा तट को पार किया है (महापात्र, 2001)।

चक्रवात की उत्पत्ति एवं तीव्रता

अनुकूल परिस्थितियों में पूर्वी हवाओं के विक्षोभों में उष्ण देशीय क्षेत्रों में निम्न दबाव का क्षेत्र निर्मित होता है। यदि समुद्र सतह का तापमान 27° सेल्सियस या अधिक हो तथा निम्न दबाव के केन्द्र में हवाएँ टकराकर ऊपर की ओर वांछित ऊंचाई तक उठने लगें तो वायु दाब में और कमी आने लगती है। नीचे सतह पर हवाओं का आपस में टकराना और ऊपरी सतह में अलग हो जाना हवा को ऊँचाई की ओर गतिशील करता है जिससे आर्द्र हवा ऊपर की ओर उठती है। ऊँची सतह पर मध्य वायुमण्डल में वाष्प जम जाती है और घनीभूतीकरण की गुप्त उष्मा मोचित करती है जिससे क्षेत्र में वायु दाब में और कमी आती है। इस प्रक्रिया के चलते कम दबाव का क्षेत्र तीव्र होकर चक्रवाती तूफान में परिवर्तित हो जाता है। अतः उत्तरी गोलार्द्ध में चक्रवाती तूफान के बनने तथा तीव्र होने के लिए निम्नलिखित अनुकूल परिस्थितियां आवश्यक हैं :–

1. समुद्री क्षेत्र जहाँ चक्रवात बनने जा रहा है विषुवत् रेखा से 5 डिग्री उत्तर अक्षांश से ऊपर अथवा 5 डिग्री दक्षिण अक्षांश के दक्षिण में होना चाहिए जहाँ

पर्याप्त मात्रा में कोरियोलिस फोर्स (बल) जो कि चक्रवात बनने के लिए जरूरी है, उपलब्ध होती है।

2. ऊँचाई में वायु की गति में बहुत कम परिवर्तन होना चाहिए।

3. समुद्र के एक वृहत् भाग में तापमान 27° सेल्सियस या अधिक होना चाहिए।

4. उच्च स्तर पर हवाएँ विलग होनी चाहिए। निम्न दबाव क्षेत्र से लेकर चक्रवात बनने तक और फिर चक्रवात कमजोर हो जाने तक लगभग 2 दिन से 15 दिन का समय आवश्यक होता है।

चक्रवात की गति

चक्रवात प्रायः पश्चिम उत्तर–पश्चिम अथवा उत्तर–पश्चिम दिशा में आगे बढ़ते हैं। कभी–कभी कुछ चक्रवात पश्चिम दिशा में भी बढ़ते हैं। कुछ चक्रवात जो उत्तर की ओर बढ़ते हैं और प्रायः उत्तर–पूर्व या पूर्व की ओर घूम जाते हैं।

प्रायः चक्रवात 10 से 20 किमी प्रतिघण्टा की रफ्तार से आगे बढ़ते हैं। पूर्व की ओर बढ़ते चक्रवात पश्चिमी लहर के सम्पर्क में आ जाएँ तो उसकी गति और अधिक हो जाती है।

चक्रवात की बनावट (आकार)

चक्रवात का व्यास 150 से 800 किलोमीटर तक होता है तथा जमीन से 10 से 17 किलोमीटर तक ऊंचा होता है। सम्पूर्ण चक्रवात उपग्रह अथवा रडार द्वारा देखा जा सकता है। रडार द्वारा रडार के केन्द्र से 500 किमी० दूरी तक स्थित चक्रवात को ही देखा जा सकता है। अतः यदि चक्रवात रडार केन्द्र से 500 किमी से अधिक दूरी पर स्थित है तो उसे रडार नहीं पकड़ पाएगा। किन्तु उपग्रह से विश्व के किसी भी स्थान पर चक्रवात को देखा जा सकता है। एक चक्रवात के साधारणतः निम्नलिखित चार अंग होते हैं :

1. चक्रवात की आँख का क्षेत्र।
2. चक्रवात के चारों तरफ बादलों की दीवार।
3. सर्पिल फीते (स्पाइरल बैंड्स)
4. बाहरी क्षेत्र।

आँख का क्षेत्र चक्रवात का केन्द्र होता है जिसका व्यास 10 से 50 किमी का होता है। उसका आकार गोलाकार अथवा अण्डाकार होता है। यहाँ आसमान साफ होता है (बादल बिल्कुल नहीं होते हैं) तथा हवा बिल्कुल हल्की होती है। यहाँ तापमान चारों ओर से अधिक होता है। अधिकतम भीषण चक्रवात आँख से सम्बद्ध होता है। किसी–किसी चक्रवात में बिना बादलों के दो क्षेत्र हो सकते हैं जो दो बादलों की दीवार से घिरे होते हैं। इन्हें अंदरूनी आँख तथा बाहरी आँख से सम्बोधित किया जाता है।

जब चक्रवात की आँख का क्षेत्र (चक्रवात का केन्द्र) तट के समीप पार करता है तब सावधान रहना अति आवश्यक है। पहले तो समुद्र तट को बहुत खराब मौसम का सामना करना पड़ता है। जब चक्रवात की आँख किसी स्थान के समीप आती है तब कुछ समय (10–15 मिनट) के लिए आसमान में प्रायः बादल नहीं होंगे एवं हल्की हवा या बारिश होती है तथा रात के समय तारे भी दिखाई पड़ते हैं। ऐसे में यह नहीं समझ लेना चाहिए कि खतरा टल गया है और चक्रवात तट को पार कर गया है क्योंकि ज्यों ही चक्रवात का केन्द्र स्थान को पार कर जाएगा 10–15 मिनट के बाद मौसम खराब हो जाएगा और भीषण वर्षा व विपरीत दिशा से तूफानी हवाएँ शुरू हो जाएंगी।

बादलों की दीवार का क्षेत्र जिससे आंख घिरी हुई होती है भीषण विनाशकारी होता है। सबसे अधिक वायु की गति तथा वर्षा का क्षेत्र यह दीवार होती है।

चक्रवात के केन्द्र के चारों ओर विचित्र प्रकार के सर्पिल फीते बादलों के बने हुए होते हैं जिनसे भीषण वर्षा होती है। चक्रवात के बाहर क्षेत्र में इनकी चौड़ाई लगभग 100 किमी होती है तथा भीतरी क्षेत्र में कम होती जाती है। बाहरी क्षेत्र में मौसम इतना खराब नहीं होता जितना बादलों की दीवार वाले क्षेत्र में/बाहरी क्षेत्र में ऊँचाई वाले बादल होते हैं।

चक्रवात से होने वाला संकट

1. भारी वर्षा के कारण।
2. तूफानी तेज हवाएँ।
3. तूफानी लहर।

एक चक्रवाती तूफान में कम से कम हल्की वर्षा भी हो सकती है तो भारी से भारी वर्षा 250 सेंटीमीटर तक अंकित की गई है। चक्रवात के केन्द्र से 50 किमी0 की दूरी तक 85 सेमी0 प्रतिदिन तथा 50 से 100 किमी0 की दूरी तक 35 सेमी0 वर्षा प्रतिदिन हो सकती है। एक चक्रवात से 50 सेमी0 वर्षा प्रतिदिन होना प्रायः सामान्य है। इतनी भीषण वर्षा से जमीन ध्वस्त हो जाना, जमीन में दरारें पड़ जाना, बाढ़ आना, कच्चे मकान ढह जाना (बाढ़ के कारण बह जाना), रास्ते बन्द हो जाना, फसल को क्षति होना, पक्के मकान ढह जाना और इससे लोगों की मृत्यु होना, पशु और प्राणियों का बाढ़ में बह जाना आदि खतरे सम्भव हैं।

तूफानी हवाओं की रफ्तार यदि 60 से 90 किमी0 प्रतिघंटा हो तो कच्चे मकान ढह जाते हैं एवं पेड़ों की शाखाएँ टूट जाती हैं। भीषण चक्रवात जिसमें हवा का वेग 10 से 120 किमी0 प्रतिघंटा होता है उससे पेड़ उखड़ जाते हैं, पक्के मकानों को क्षति पहुंचती है एवं संचार साधन प्रभावित होते हैं। अति भीषण चक्रवात जिसमें हवा का वेग 120 से 220 किमी0 एवं महाचक्रवात जिसमें हवा का वेग 220 किमी0 से अधिक होता है, बड़े पेड़ जड़ से उखाड़ देता है, मकानों एवं इमारतों को भारी क्षति पहुँचाता है, संचार साधन पूर्ण रूप से क्षतिग्रस्त हो जाते हैं।

उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातीय तूफान का भीषणतम विनाशकारी लक्षण तूफानी लहर है जो समुद्र तट से इलाकों को विनष्ट कर देती है। हाल ही के महाचक्रवात से सामान्य लहर से लगभग 5–6 मीटर ऊँची तूफानी लहर उठी और ओड़िसा तट को पारद्वीप बन्दरगाह के पास पार कर पाराद्वीप शहर के भीतर 35 किमी0 तक समुद्र के पानी को बहा कर ले गई जिससे पाराद्वीप शहर पानी–पानी हो गया जिसमें तैरती मनुष्यों की लाशों एवं पशुओं के शवों की कल्पना से विनाश का अन्दाजा लगाया जा सकता है कि यदि 5–6 मीटर ऊँची पानी की दीवार समुद्र तट को पार कर आबादी वाले इलाके में 35 किमी0 दूर तक छा जाए तो क्या मनुष्य एवं पशुओं का बचना सम्भव होगा विशेष कर जो खुले स्थानों पर होंगे अथवा कच्चे मकानों में होंगे विशेष रूप से चक्रवात के शिकार होंगे।

चक्रवात के साथ उत्पन्न हुई तूफानी लहर चक्रवात के केन्द्र में वायुमण्डल के चाप के पतन, चक्रवात में हवा का वेग, चक्रवात गति करने वाले तटीय क्षेत्र की जमीन का आकार और प्रकार, चक्रवात के जमीन पर अतिक्रम करने का समय और तिथि इत्यादि के ऊपर निर्भर करता है। चक्रवात के केन्द्र के दाहिने भाग में बायें भाग की तुलना में अधिक लहर आती है इसलिए चक्रवात का दाहिना भाग अधिक विनाशकारी होता है। चक्रवात के केन्द्र में चाप का पतन अधिक होने से लहर अधिक उठती है और चक्रवात में हवा का वेग अधिक होने से भी तूफानी लहर अधिक होती है। तटीय क्षेत्र समतल होने से तूफानी लहर अधिक क्षेत्र में अधिक रफ्तार से क्षति पहुँचाती है। जब तटीय क्षेत्र तीक्ष्ण होता है तब तूफानी लहर कमजोर होती है और कम तटीय क्षेत्र प्रभावित होता है इसलिए एक ही प्रकार के चक्रवात दक्षिण ओड़िसा के तट पर कम और उत्तर ओड़िसा के तट पर अधिक तूफानी लहर उत्पन्न करते हैं।

चक्रवाती तूफान को कमजोर करने के प्रयास व उसका रुख मोड़ने के वैज्ञानिक प्रयास सफल नहीं हो पा रहे हैं।

चक्रवाती तूफान से बचने के उपाय

चक्रवात के प्रभाव को कम करने के लिए तटीय इलाकों में यदि पेड़ पौधे लगाए जाएँ तो वायु के वेग को कम किया जा सकता है। तूफानी लहर का प्रभाव कम करने के लिए समुद्र तट पर दीवाल अथवा तटीय राजपथ तैयार कर विनाश में कमी लाई जा सकती है। समुद्र तट पर नमकीन पानी में स्थित वन तूफानी हवा को बाधा पहुँचाते हैं। चक्रवात से होने वाले खतरों से बचा नहीं जा सकता परन्तु बचाव के उपाय कर उन्हें कम किया जा सकता है। विभिन्न वैज्ञानिक पद्धतियों के माध्यम से भारत मौसम विज्ञान विभाग द्वारा उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातीय तूफान का पूर्वानुमान तथा चेतावनी आकाशवाणी, दूरदर्शन, इन्टरनेट तथा समाचारपत्रों के माध्यम से दी जाती है। विभिन्न क्षेत्रीय

चक्रवाती केन्द्रों कोलकाता, मुम्बई एवं चेन्नई तथा चक्रवात चेतावनी केन्द्रों भुवनेश्वर, विशाखापट्टनम एवं अहमदाबाद द्वारा सम्बंधित तटीय क्षेत्र के लिए चक्रवात सम्बंधी पूर्वानुमान व चेतावनी जारी की जाती है। चक्रवात चेतावनी केन्द्र, भुवनेश्वर मौसम विज्ञान केन्द्र, भुवनेश्वर हवाई अड्डे पर स्थित है एवं ओड़िसा तट के लिए चक्रवात चेतावनी जारी करता है। बंगाल की खाड़ी में जब कभी भी कोई चक्रवाती तूफान बनने की सम्भावना होती है अथवा बन चुका होता है तो 72 घण्टे पूर्व चक्रवात चेतावनी सम्भाग, मौसम विज्ञान विभाग, मौसम भवन, नई दिल्ली द्वारा चक्रवात से सम्बन्धित दृष्टिकोण जिसमें चक्रवात के बनने की सूचना सम्भवतः उसके आगे बढ़ने की दिशा व गति तथा किस समुद्र तट को पार करने की सम्भावना है इसकी सूचना संचार माध्यमों से जारी करता है। चक्रवात चेतावनी केन्द्र, भुवनेश्वर अपने ओड़िसा तट की सुरक्षा के लिए 48 घण्टे पूर्व सावधान करने के लिए विज्ञप्ति (बुलेटिन) जारी करता है तथा यदि ओड़िसा तट को खतरा होने की सम्भावना हो तो 24 घण्टे पूर्व चक्रवात चेतावनी जारी करता है। चक्रवात से सावधानी एवं चेतावनी की विज्ञप्ति खतरा होने पर हर 3 घंटे में जारी की जाती है जो कि तुरन्त राज्य सरकार के उच्चाधिकारियों को फोन/फैक्स द्वारा पहुँचाई जाती है। ये चेतावनियां आकाशवाणी एवं दूरदर्शन को भेजी जाती हैं जिसका प्रसारण प्रति घंटे किया जाता है। चक्रवात के समुद्र तट को पार करने तथा खतरा समाप्त होने पर चेतावनी बन्द कर दी जाती है। चेतावनी तटीय क्षेत्र के जिलाध्यक्षों को भी फोन/फैक्स द्वारा भेजी जाती है जो जन साधारण को पहुँचाने तथा उचित सुरक्षा कदम उठाने, जन समुदाय को खतरे के स्थान से सुरक्षित स्थान तक ले जाने की कार्यवाही करते हैं। सभी समाचारपत्रों एवं एजेंसियों को भी चेतावनी भेजी जाती है।

मौसम विज्ञान केन्द्र
भुवनेश्वर

श्रद्धांजलि

डॉ० एम.एम. राय का निधन

देश के प्रसिद्ध मृदाविज्ञानी, जबलपुर विश्वविद्यालय के कृषि संकाय के डीन और मृदा विज्ञान विभाग के अध्यक्ष, प्रो0 माधुरी मोहन राय का गत 25 फरवरी को निधन हो गया। वे लगभग 70 वर्ष के थे।

डॉ0 राय विज्ञान परिषद् प्रयाग से वर्षों से जुड़े हुए थे और परिषद् की परामर्शदात्री समिति के सक्रिय सदस्य के रूप में विज्ञान के लोकप्रियकरण के प्रति सदैव कटिबद्ध रहे। उन्होंने परिषद् द्वारा आयोजित अनेक संगोष्ठियों को सम्बोधित किया। डॉ0 राय को विज्ञान परिषद् प्रयाग परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित है।

–सम्पादक

हिन्दी.देवनागरी का कम्प्यूटरीकरण : समस्याएँ व सुझाव

— नीलेश कुमार जैन,

आज के कम्प्यूटर संकेंद्रित *सूचना क्रान्ति* के युग में, हिन्दी से यह अपेक्षा की जा रही है कि वह कम्प्यूटरीकरण की प्रक्रिया से सार्थक रूप से गुजर कर इतनी सक्षम एवं समर्थ बने कि आधुनिकता के समस्त मानकों पर खरे उतरते हुए संप्रेषण और संचार की अधुनातन चुनौतियों का सामना कर सके।

आज सामान्य लेखन; व्यक्तिगत से लेकर व्यावसायिक पत्राचार; सरकारी पत्र-व्यवहार; दस्तावेज़ीकरण और अधिकांश मुद्रण; संचार कार्य सब कुछ कम्प्यूटरीकृत हो गया है। ऐसे में देवनागरी के ऊपर यह अप्रत्यक्ष दायित्व आन पड़ा है कि वह कम्प्यूटर की विशिष्ट माँगों को पूरा करे, जिससे एक तरफ लिपि और भी मानकीकृत हो सके और दूसरी तरफ सरलीकरण की अपनी परम्परागत रीति-नीति को और भी विकसित कर और अधिक सुग्राहय और सुबोध बन सके, जिसके फलस्वरूप हिन्दी का उत्तरोत्तर विकास आधुनिकता के समानान्तर हो सके। राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा हिन्दी की संवाहिका के रूप में, राष्ट्रलिपि देवनागरी से इस नये दायित्व का संवहन करने के लिए नवीन अपेक्षाएं की जा रही हैं।

किसी भी भाषा को विषयगत आधुनिकता के साथ-साथ लिपिगत आधुनिकता को भी ग्रहण करना पड़ता है; तभी उसे स्थायित्व प्राप्त होता है। लिपि लिखित भाषा का माध्यम है — भाषा के भौतिक रूप का साधन है — *साध्य के लिए हमें एक तरफ साधन सम्पन्न होना पड़ता है; तो दूसरी तरफ इस साधन को सम्पन्न करना होता है।*

कम्प्यूटर जैसे अन्य इलेक्ट्रानिक मीडिया, फैक्स-मॉडेम के साथ-साथ इंटरनेट जैसी सूचना प्रणलियों ने इसमें सुधार को अपरिहार्य बना दिया। इस परिप्रेक्ष्य में आज देवनागरी के सामने निम्नांकित क्षेत्रों में नवीन समस्यायें चुनौती बन गयी हैं :—

1. टंकण के स्तर पर : इलेक्ट्रानिक टाइपिंग से लेकर सामान्य कम्प्यूटर टाइपिंग तक;
2. पेज मेकिंग : डेस्क टॉप पब्लिशिंग;
3. मुद्रण हेतु : ऑफसेट प्रिन्टिंग;
4. संचार हेतु इंटरनेट-प्रयोग के स्तर पर....

उपरोक्त क्षेत्रों में समग्र रूप में निम्नलिखित समस्यायें हैं; जिनका समाधान भी संभव हैं :—

1. स्वर और मात्रा :—

इसमें 'ऋ' स्वर को लेकर समस्या है; क्योंकि यह मात्रारूप जिस व्यंजन में लगता है, उससे अलग हटकर भी लग जाता है; जैसे —

➤ कृ (अमानक रूप)

➤ कृ (मानक रूप मूल *की बोर्ड* से परे Alt+0209 पर ही उपलब्ध)

इस प्रयोग से अमानकता आती है तथा लिपि श्रीहीन हो जाती है अन्यथा इसको सही रूप में कम्प्यूटरीकृत करने के लिए *स्पेशल करेक्टर* का प्रयोग करना पड़ता है जिससे समय; श्रम; गति एवं सौन्दर्य प्रभावित होते हैं। व्यावहारिक सुधार अपेक्षित है जिससे कि उच्चारण के स्तर पर लुप्त हो गये इस स्वर को किसी वैकल्पिक रूप में प्रयोग किया जा सके। इसके लिए 'ऋ' मात्रा—संयुक्त बहुप्रयुक्त लिपि चिह्न *की डिफाइन* करके *पैसिव कीज़* पर रखे जा सकते है।

ऐसे ही 'ऊ' मूल *की बोर्ड* से परे Alt+0197 पर ही उपलब्ध है, इसे भी मूल *की बोर्ड* पर स्थान देना होगा।

2. अनुस्वार और अनुनासिक चिह्न :—

अनुस्वार चिह्न (ं) का बिन्दु रूप, अब

सरलीकरण के आग्रह के फलस्वरूप अनुनासिक चिह्न के लिए प्रचलित तो हो रहा है; लेकिन इससे द्विविधा भी हो रही है। वैसे भी *'एक चिह्न : दो आशय'* लिपि को अमानक बनाते हैं। अनुस्वार चिह्न हेतु प्रस्तावित गोला रूप (॰) अपना कर, इस समस्या का निदान किया जा सकता है।

कम्प्यूटरीकरण में इन चिह्नों को लेकर अस्पष्टता है। चूंकिः जब यह किसी मात्रा से संयुक्त होकर लगते हैं तो यह एक दूसरे में समा जाते हैं; जैसे –

➤ ाँ (अमानक रूप)

➤ ा ँ (मानक रूप मूल अनुपलब्ध)

➤ चंद्रबिन्दु मूल *की बोर्ड* के स्थान पर **Alt+0161** पर ही उपलब्ध।

अतः इस क्षेत्र में मानक हिन्दी को और बढ़ावा देना चाहिए, जो केवल वहीं इनके प्रयोग की बात करती है; जहाँ इसका भाषा शास्त्रीय/शैक्षिक महत्त्व है अथवा जहाँ अनुस्वार व अनुनासिकता चिन्ह के बीच भेद करना अर्थ की दृष्टि से परमावश्यक है; जैसे – 'हँस' और 'हंस'।

3. विसर्ग :–

विसर्ग में उन स्थानों पर जहाँ यह मध्य में आता है; वहाँ शिरोरेखा टूट जाती है, जिससे पंक्ति के अंत में आने पर कुछ *फॉण्ट्स* में *हॉइफनेशन* समस्या हो जाती है अर्थात शब्द टूट कर अगली पंक्ति में चला जाता हैं; जैसे –

➤ दुः
ख

इसके अतिरिक्त इससे विराम चिह्न *कोलन* (:) का भी भ्रम होता है, जिससे कम्प्यूटरीकरण व वैज्ञानिकता प्रभावित होती है अतः मानक हिन्दी के आग्रह स्वरूप इस प्रयोग को उसी स्थान तक सीमित किया जाय जहाँ उसका शास्त्रीय-शैक्षिक महत्व हो।

4. व्यंजन :–

ध; भ; थ... व्यंजन, जो मूल *की बोर्ड* पर पूर्ण नहीं हैं; वरन् खड़ी पाई के संयुक्त होने से बनते हैं, उनका पंक्ति के अंत में आने पर टूटकर, दूसरी पंक्ति में चले जाना एक सामान्य समस्या है; जैसे –

➤ ध
ा

ऐसे व्यंजनों को भले *स्पेशल करेक्टर* के रूप में ही सही खड़ी पाई से संयुक्त करके *करेक्टर मैप* में रखना चाहिए। इनको मूल *की बोर्ड* पर सुनिश्चित करके लिपि के सौन्दर्य को अनुरक्षित करना ही होगा।

➤ व्यंजन में वर्ग के पंचम अक्षर के स्थान पर अनुस्वार के प्रयोग को बढ़ावा देना चाहिए; जैसे – पञ्च के स्थान पर पंच; क्योंकि यह *एल्टर की* के साथ *कोड* का प्रयोग करके ही उपलब्ध हैं; यथा –

ङ **Alt+0179** पर व

ञ **Alt+0180** पर ही उपलब्ध।

इससे टंकण की गति तेज होगी व संचार एवं संप्रेषण के माध्यमों में यह कम समय लेंगे।

➤ *नुक्ता* का प्रयोग केवल उन्हीं स्थानों पर किया जाए; जहाँ अर्थ-भ्रम हो सकता है; जैसे–

राज

राज़।

➤ गैर हिन्दी ध्वनियों को स्थान देने के लिए अभी कम्प्यूटर में परिवर्धित देवनागरी के रूपों का अभाव है। अतः नये *फॉण्टस* में परिवर्धित देवनागरी के व्यंजनों को स्थान देना ही पड़ेगा, भले उन्हें *स्पेशल करेक्टर* के रूप में ही क्यों न कूटबद्ध किया जाय; जैसे –

ळ (वर्तमान में यह मराठी चिह्न ही उपलब्ध है।)

5. संयुक्त व्यंजन :–

संयुक्त व्यंजनों में कुछ को मूल *की बोर्ड* पर रखा गया है तो कुछ को *एल्टर की* के साथ; जैसे –

➤ द्व व द्ध मूल *की बोर्ड* उपलब्ध

➤ स्र मूल *की बोर्ड* के स्थान पर **Alt+0242** पर उपलब्ध।

त्र को लेकर भी समस्या है क्योंकि कुछ *फॉण्ट्स* में यह मूल की बोर्ड पर पूर्ण रूप मे उपलब्ध

है जैसे *अमर* नामक *फॉण्ट* में, अन्यथा खड़ी पाई के संयुक्त होने से ही बनना; जैसे (ऽ + ा) *नारद फॉण्ट* में। इससे *फॉण्ट* परिवर्तन करने पर त्रुटि हो सकती है; जैसे –

➤ मात्रा (*अमर* नामक *फॉण्ट* में)

➤ मात्र (*नारद* नामक *फॉण्ट* में परिवर्तन करने पर)

कुछ संयुक्त व्यंजन दोहरे *कोड* पर उपलब्ध होने के कारण द्विविधा को जन्म देते हैं; जैसे –

➤ द्व (कृति देव 020 नामक फॉण्ट में Alt+0152)

➤ द्व (कृति देव 020 नामक फॉण्ट में Alt+0246)

6. द्वित्व व्यंजन :–

इनके प्रयोग से वैज्ञानिकता प्रभावित हो रही है; क्योंकि कम्प्यूटर उस पंक्ति में जो सबसे नीचे का व्यंजन होगा, उसी के अनुसार *इन्टर लाइन स्पेसिंग* के *ऑटो कमाण्ड* को लेकर, पहली पंक्ति से उसकी दूरी बनायेगा, इसके पंक्तियों के मध्य की दूरी में एकरूपता नहीं रहेगी जिससे लिपि श्रीहीन होगी।

दूसरी तरफ अधिक दूरी से पैराग्राफ के बदलने का भ्रम भी हो सकता है। अतः इस क्षेत्र में द्वित्व को तोड़कर हल् चिन्ह के साथ प्रयोग करने जोर देना होगा; जैसे –

➤ उद्‌देश्य ।

7. विराम चिन्ह :–

यद्यपि इन क्षेत्र में रोमन के सभी विराम चिह्न स्वीकार्य हैं लेकिन पूर्णविराम (।) के स्थान पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अंग्रेजी-रोमन के *फुलस्टाप* (.) का प्रयोग चल रहा है। यह प्रयोग भ्रमात्मक है क्योंकि अगली पंक्ति के लिए यह अनुनासिक चिन्ह का रूप भी धर सकता है; जैसे –

➤ कस. (इसमें प्रयुक्त अंग्रेजी-रोमन *फुलस्टाप*)

➤ कंस (नीचे की पंक्ति हेतु अनुनासिक चिन्ह)

➤ इसके अतिरिक्त *हाइफन* (-) या योजक चिह्न की अनुपलब्धता है; जबकि इसका महत्व सर्वसिद्ध है। वर्तमान में *डैश* चिह्न से, मध्य के स्थान को कम करके ही काम चलाया जा रहा है। इसके प्रयोग को हर संभव रूप में प्रोत्साहित किया जाना चाहिए क्योंकि इससे एक तरफ कठिन संधियों से बचने में और दूसरी तरफ टंकण के स्तर पर भी सुविधा होगी।

➤ *कोलन डैश* (:–) में जो प्रचलन अंग्रेजी के प्रभाव से; मात्र *कोलन* (:) लगाकर हो रहा है उससे विसर्ग का भ्रम होता है अतः हिन्दी कम्प्यूटरीकरण में सदैव *कोलन डैश* का ही प्रयोग किया जाय।

➤ कोष्ठक चिह्न (मूल *की बोर्ड* पर अनुपलब्ध)

इसके लिए Alt+0188 - Alt+0189 का प्रयोग करना पड़ता है अर्थात इस एक चिह्न हेतु नौ गुना प्रयास करना पड़ता है।

➤ हिन्दी *फॉण्ट्स* में तारक चिह्नों का अभाव हैं; जैसे –

● ✻ ☆

इससे स्पष्टीकरण में असुविधा होती है।

8. अंक व्यवस्था :–

कुछ *फॉण्ट्स* में अंकों के देवनागरी रूप उपलब्ध हैं; जैसे –

➤ *अमर* नामक *फॉण्ट* में ....१ ...२...३..... तो

➤ कुछ *फॉण्ट्स* में 1....2...3.... रूप; जैसे *कृतिदेव 010* नामक *फॉण्ट* में ।

अतः *फॉण्ट्स* परिवर्तन करने पर त्रुटि हो जाती है।

इसके अतिरिक्त हिन्दी के कम्प्यूटरीकरण के लिए कम्प्यूटर आधारित प्रकाशन (डेस्क टॉप पब्लिशिंग); ऑफसेट प्रिंटिग व इण्टरनेट प्रयोग हेतु देवनागरी लिपि में कुछ व्यावहारिक सुधार भी अपेक्षित है; यथा :–

➟ ॐ (सांस्कृतिक भाव का संवाहक चिह्न)

इस चिह्न को सभी हिन्दी *फॉण्ट्स* में अनिवार्य रूप से स्थान देना होगा, जो अभी अपवाद स्वरूप ही

उपलब्ध है।

➠ सम्प्रति कम्प्यूटर टाइपिंग हेतु दो विभिन्न प्रकार के *की बोर्ड* (कुंजीपटल) यथा *रैमिंगटन* व *फोनेटिक* का प्रयोग हो रहा है। इससे कम्प्यूटर के संचालकों को दोहरी सिद्धता हासिल करनी पड़ती है, जिससे असुविधा व भ्रम होता है, अतः इनके स्थान पर एक सर्वमान्य कुंजीपटल या *की बोर्ड* स्वीकार किया जाय।

➠ यह भी आवश्यक है कि समस्त प्रयुक्त चिन्हों का पूर्ण *कैरेक्टर मैप* उपलब्ध हो जिसमें मूल; *स्पेशल करेक्टर* व *कोडेड करेक्टर* सभी प्रदर्शित हो सकें साथ ही वह छपकर बाहर भी आये अर्थात् वह *प्रिंटेबल* हो जिससे नया प्रयोग कर्ता भी उससे टंकण में सुविधा और सहयोग प्राप्त कर सके।

➠ यह भी आवश्यक है कि समस्त प्रकार के *फाण्ट्स* में एक प्रकार के चिन्ह के लिए एक ही कूट (Code) हो। सम्प्रति इसमें विभिन्नताएं हैं अतः संचालक को अनगिनत कूट याद रखने पड़ते है; जैसे –

➤ *कृतिदेव 040* नामक फॉण्ट में Alt+0171 पर 'ि' है

➤ *कृतिदेव 160* नामक फॉण्ट में Alt+0171 पर ' त्र ' है।

➠ वर्तमान में शीघ्रता हेतु *ऑफसेट प्रिंटिग* का अधिकाधिक प्रयोग हो रहा है, जिसके लिए *पेज मेकिंग* व *प्रोसेसिंग* हेतु कम्प्यूटर ही आधार है, अतः इसकी समस्या का भी समाधान करना ही होगा।

➤ सम्प्रति प्रयुक्त *फाण्ट्स* के आकार में एक रूपता नहीं है अर्थात् एक *फाण्ट* का 20 प्वाइंट अगर एक सेमी0 ऊँचाई व सवा सेमी0 चौड़ाई घेरता है तो दूसरा *फाण्ट* इससे अधिक या कम। इससे एक *फाण्ट* को दूसरे *फाण्टस* में परिवर्तित करने में *पेज मेकिंग* अव्यवस्थित हो जाती है क्योंकि छोटा-बड़ा होने से कम्प्यूटर स्वतः ही *आटोशिफ्टिंग* करता है जिससे आकार के समानुपात में *इंटर लाइन* व *इंटर पैराग्राफ स्पेसिंग* भी घट-बढ़ जाती है, अतः पेज *मेकअप* श्रीहीन हो जाता है।

➤ ऐसे *फॉण्ट्स* से बचना होगा जिनमें *सेरिफ स्ट्रोक* (SERIF STROKE) होते है अर्थात् कोने पतले होते हैं; क्योंकि *ऑफसेट प्रिंटिग* में एक तरफ *कैमरा-प्रोसेसिंग* व दूसरी तरफ *प्लेट-मेकिंग* में यह कोने भर जाते हैं, जिससे लिपि का सौन्दर्य प्रभावित होता है। अतः इनका प्रयोग *डेकोरेटिव फाण्ट्स* के रूप में ही किया जाए सामान्य सामान्य *बुक वर्क* में नहीं।

➠ सम्प्रति उपलब्ध *की बोर्ड* विदेशी मॉडलों पर बने हैं अतः उनमें देवनागरी के लिपि चिन्हों को अंकित नहीं किया जाता है। इससे एकदम नया प्रयोक्ता उसकी तरफ आकर्षित नहीं हो पाता और इस समस्या के उपचार हेतु जो ऊपर से स्टीकर लगाने की व्यवस्था है, वह स्थायी नहीं है अतः अब भारत की राष्ट्रीयलिपि की आवश्यकताओं को देखते हुए देवनागरी के चिन्हांकित संयुक्त *की बोर्ड* भी निर्मित होने चाहिए।

➠ वर्तनी शुद्धि हेतु SPELL CHECKER सभी पैकेजों में सामान्य रूप से उपलब्ध होने चाहिए।

➠ संचार में, विभिन्न *फॉण्ट्स* या अक्षर रूप की विविधता के कारण *ई-मेल* द्वारा भेजा गया *फॉण्ट* अगर पाने वाले के पास उपलब्ध नहीं है तो वह अनगढ़ रूप से सम्प्रेषित होता है; यथा यहाँ से *'अमन'* नाम का भेजा गया *फाण्ट* वहाँ भी होना चाहिए अतः संचार हेतु *'भारत'* या *'हिन्द'* जैसे सर्वविदित संज्ञाओं वाले कुछ ऐसे सार्वभौमिक *फाण्ट्स* को विकसित करने की आवश्यकता है, जो कम्प्यूटर्स में अंग्रेजी के 'Default Fonts' (Times, Universal, Arial & Helvetica) की तरह पूरी दुनियाँ में उपलब्ध हो जिससे संचार एवं सम्प्रेषण बाधित न हो। इसके अभाव में हिन्दी *वेब साइट्स* लोकप्रिय होने में बाधा उत्पन्न होगी; क्योंकि पहले उनमें प्रयुक्त *फाण्ट्स* को *डॉउन लोड* करना होगा।

इन सब सुधारों एवं प्रयासों से हिन्दी-देवनागरी का यह विवाद सुलझेगा कि इसे सक्षम एवं समर्थ बनाकर ही प्रयोग किया जाए अथवा प्रयोग के द्वारा इसे सक्षम एवं समर्थ बनाया जाए।

26/जे, पार्क रोड,
इलाहाबाद।

विश्वविद्यालयों में शिक्षण, अनुसंधान एवं तकनीक का त्रिकोण

प्रो० रामचरण मेहरोत्रा

दीर्घकाल से उच्च शिक्षा के तीन ध्येय माने जाते रहे हैं : 1. ज्ञान का विसर्जन, 2. ज्ञान का विस्तार तथा 3. दोनों का मानव–हित में उपयोग। यद्यपि ज्ञान की समस्त शाखाओं जैसे अर्थशास्त्र तथा समाज विज्ञान आदि में भी यह त्रिकोण प्रभावी होता है, तथापि विज्ञान और विशेष रूप से रसायनशास्त्र में तो यह क्रिया–प्रतिक्रिया बराबर ही दृष्टिगोचर रहती है।

यद्यपि इन दिशाओं में हमारे रसायनज्ञ महर्षियों जैसे आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में ही न केवल अति उच्च कोटि के अनुसंधान ही किए वरन् साथ ही बंगाल केमिकल तथा फार्मास्यूटिल वर्क्स का भी शुभारम्भ किया, जो आज भी कार्यशील है।

शान्ति काल में ही नहीं, वरन् युद्ध काल में भी यह त्रिकोण अत्यन्त प्रभावी रहता है। उदाहरण के लिए हमारे वयोवृद्ध प्रोफेसर आचार्य नील रत्न धर दृष्टान्त दिया करते थे कि यद्यपि जर्मनी के शासक 'कैसर' बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के आरम्भ (लगभग 1911–12) में ही विश्व युद्ध आरम्भ करना चाहते थे, परन्तु वे जानते थे कि विस्फोटक बमों आदि के निर्माण में नाइट्रोजन यौगिकों के भण्डार थे नहीं, और इसके लिए जर्मनी को चिली के साल्टपीटर (सोडियम नाइट्रेट) पर निर्भर रहना पड़ता था। जर्मन शासक इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थे कि उनके शत्रु ब्रिटेन के पास नाविक साधन अत्यन्त शक्तिशाली है और इसलिए उनको चिली से सोडियम नाइट्रेट प्राप्त करते रहना बिल्कुल असम्भव हो जाएगा। इसलिए जर्मन शासकों ने अपने देश के रसायनज्ञों को आदेश दिए कि कोई ऐसी विधि का अन्वेषण करो जिससे हमारे वायुमण्डल में उपस्थित नाइट्रोजन गैस के अथाह भण्डार को युद्ध के लिए आवश्यक नाइट्रोजनी विस्फोटकों में परिवर्तित किया जा सके। बहुत परिश्रम करके जर्मनी के प्रसिद्ध रसायनज्ञ फ्रिट्ज हाबर ने 1913 में इस ओर सफलता पाई जिसके द्वारा वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को उपयोगी यौगिकों में परिवर्तित किया जा सके। यह विधि नाइट्रोजन फिक्सेशन (अथवा नाइट्रोजन स्थिरीकरण) के नाम से प्रसिद्ध हुई और आज तक शान्ति काल में भी अति आवश्यक उर्वरक और युद्ध के लिए विस्फोटक इसी विधि से प्राप्त होते हैं। स्वाभाविक ही है कि हाबर को इस अति उच्च कोटि की उपयोगी गवेषणा के लिए नोबल पुरस्कार भी प्रदान किया गया।

विज्ञान–अनुसंधानों द्वारा जनित तकनीकों और उससे प्राप्त आर्थिक लाभ की ओर तो प्रारम्भ में वैज्ञानिकों का ध्यान ही नहीं जाता था। इस प्रकार की मनोधारणा का एक अति प्रसिद्ध प्रतीक उन्नीसवीं शताब्दि के आश्चर्यजनक प्रतिभा वाले वैज्ञानिक माइकेल फैराडे थे जिनके लिए यह कहा जाता है कि विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में उनकी गवेषणाएँ इतनी सर्वोच्च कोटि की थीं कि यदि उस काल में नोबेल पुरस्कार की प्रथा होती तो उनको अपनी विभिन्न गवेषणाओं के लिए कम से कम 4–5 नोबेल पुरस्कार अवश्य प्रदान किये गए होते। इन्हीं उच्च कोटि की गवेषणाओं में उनके द्वारा 'इलेक्ट्रोमैग्नेटिक इंडक्शन' का सिद्धान्त था जिसके द्वारा प्रदर्शित किया गया था कि यदि धात्वीय तारों के

जाल में एक चुम्बक घुमाया जाए, तो विद्युत का उत्पादन सम्भव हो सकता है। सच है कि इसी सिद्धान्त पर विद्युत का उत्पादन ही नहीं होता, वरन बिजली के पंखे और मोटर भी इसी सिद्धान्त से अपना कार्य कर पाते हैं। फैराडे ने जब अपनी इस अद्‌भुत गवेषणा को एक गोष्ठी में प्रदर्शित किया, तो श्रोताओं में उपस्थित ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमंत्री ने यह प्रश्न किया कि आपकी इस गवेषणा का मानव–हित में किस प्रकार उपयोग हो सकेगा ? फैराडे का तत्काल उत्तर था कि, "सरकार उसके उपयोगों पर टैक्स लगा कर असीमित धन अर्जित कर सकेगी।" आज समस्त संसार जानता है कि फैराडे की यह निस्वार्थ भविष्यवाणी कितनी सच्ची थी।

इसी प्रकार की एक अन्य गवेषणा का उल्लेख करना उचित होगा। उस काल के सर्वश्रेष्ठ विस्फोटक 'ट्राइ–नाइट्रो–टॉल्युइन' की गवेषणा स्वीडन के एक रसायनज्ञ अल्फ्रेड नोबेल ने की थी और अपनी इस गवेषणा का पेटेण्ट भी करा दिया था। इस पेटेण्ट पर रायल्टी से इतनी अधिक मात्रा में धन उपार्जित हुआ कि अल्फ्रेड नोबेल ने नोबेल पुरस्कारों की योजना का शुभारम्भ किया। कितने महान थे वे वैज्ञानिक !

भारतीयों की सर्वहित सुखाय भावना से प्रेरित हमारे देश में दीर्घ काल तक पेटेण्ट लेने की ओर ध्यान ही नहीं गया। परन्तु इधर कुछ समय से मानव–लोलुपता की भावना इतनी प्रबल हो चली है कि हमारे देश में अतिप्राचीनकाल से प्रचलित 'नीम' तथा 'हल्दी' की उपयोगिता पर भी अन्य देशों में पेटेण्ट लेने के लिए प्रयत्न किए गए, जिससे हम भारतीयों को भी अपनी इन अति–प्राचीन गवेषणाओं पर भी उन्हें रॉयल्टी देनी पड़ती। सौभाग्य से इस आधुनिक काल में सी.एस.आई.आर. के निदेशक डॉ0 माशेलकर जैसे दूरदर्शी व्यक्तियों ने इस प्रकार के प्रयासों का डट कर विरोध किया और अपने प्रयासों में सफलता भी पाई। साथ ही लोलुपतापूर्ण विश्व के वातावरण में अपनी गवेषणाओं को भी पेटेण्ट करवाने पर सबका ध्यान आकर्षित किया। संयोगवश हमारे विश्वविद्यालयों में इस प्रकार के उपयोगी अनुसंधानों का प्रचलन ही नगण्य है, परन्तु सौभाग्य से इस ओर अब तीव्रता से ध्यान आकर्षित किया जा रहा है, जिसकी ओर शैक्षणिक संस्थाओं के वैज्ञानिकों को भी तेजी से सजग हो जाना चाहिए और पेटेण्ट लेने की सुविधाएँ भी सृजित की जानी चाहिए।

शिक्षक समुदाय को स्व तथा राष्ट्रीय हित में अपनी निस्वार्थ भावनाओं में अन्तर लाना आवश्यक है। मैं स्वयं भी ऐसे दर्जनों उदाहरण प्रस्तुत कर सकता हूँ, परन्तु संक्षेप में अपने ही एक अनुभव के वर्णन से इस छोटे से लेख को समाप्त करना चाहूँगा। सन् 1950–52 से हमारी प्रयोगशालाओं में 'धात्वीय ऐल्कॉक्साइडों' पर उच्च कोटि का कार्य हुआ है और 'बहु–धात्वीय ऐल्कॉक्साइडों' में तो हमारी प्रयोगशालाएँ संसार भर में अग्रणी श्रेणी में गिनी जाती हैं। इन नए व्युत्पन्नों से अत्यन्त सरल विधि से 'ऑक्साइड–सेरेमिक मैटीरियल' बनाए जा सकते हैं। सन् 1988 में यू.सी.एल.ए. (अमरीका) में 4 भाषणों के लिए प्रोफेसर जे.डी. मैकेन्जी ने मुझे आमंत्रित किया था और मेरे प्रत्येक भाषण के बाद मुझसे प्रश्न किया करते थे कि, "डॉ0 मेहरोत्रा, आप इन गवेषणाओं को पेटेन्ट क्यों नहीं करा लेते ?" अपनी तत्कालीन मनोवृत्ति से प्रेरित मेरा सीधा सा उत्तर था कि मैं तो एक क्षुद्र सा शिक्षक वैज्ञानिक हूँ और अपने विद्यार्थियों तथा सहयोगियों की गवेषणाओं से मुझे आनन्द की जो अनुभूति होती है, वह मेरे लिए पर्याप्त है। परन्तु आज 15 वर्षों बाद मेरी प्रतिक्रिया यही होती जा रही है कि मैं उस समय गल्ती पर था।

हमारे आइ.आइ.टी. संस्थानों में तो पेटेण्ट कराने की जटिल समस्याओं के समाधान उपलब्ध हो रहे हैं और आशा है कि जल्द ही ये सुविधाएँ हमारे विश्वविद्यालयों में भी उपलब्ध हो सकेंगी, जिससे शिक्षण, अनुसंधान तथा तकनीक का यह त्रिकोण अधिक सुदृढ़ हो सके तथा इस त्रिकोण का पूरा लाभ लेने के लिए कुछ धन–प्रसाधन भी अधिक सुगमता से उपलब्ध हो सके। इसी अन्तिम भावना के अन्तर्गत राजस्थान विश्वविद्यालय में मध्य जनवरी 2003 में एक गोष्ठी आयोजित की गई जिससे विश्वविद्यालयों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया जा सके।

सच बात तो यह है कि इस संक्षिप्त लेख के द्वारा अपने देश के वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित करने की प्रेरणा मुझे अमेरिकन केमिकल सोसाइटी के अध्यक्ष प्रो0 एली पियर्स की एक टिप्पणी से मिली, जो उन्होंने अपनी सोसाइटी के मुखपत्र 'केमिकल एण्ड इंजीनियरिंग न्यूज' के 9 दिसम्बर 2002 के अंक में प्रकाशित की है। प्रोफेसर एली 2002 में ही 'इन्टरनेशनल यूनियन फार प्योर एण्ड एप्लाइड केमिस्ट्री' के अधिवेशन में गए थे और वहाँ उपयुक्त त्रिकोण की तेजी से बढ़ती प्रगति ने उन्हें इतना प्रभावित किया था कि उन्होंने उपर्युक्त टिप्पणी से अपने देशवासियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि उनका महान देश अमरीका चीन से इन दिशाओं में पिछड़ता जा रहा है। स्वाभाविक है कि आज अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा के युग में हमारे लिए इस दिशा में पूरा ध्यान देना और भी आवश्यक हो गया है। दो–तीन दिन पहले ही बंगलौर में हमारी इण्डियन साइंस कांग्रेस में ही यह चर्चा हुई थी कि कम्प्यूटर के उपयोगों में भी हम पिछले एक दो साल में चीन से पिछड़ते जा रहे हैं। आशा है कि इस लेख के विचारों से हम और सजग हो सकेंगे जिससे यह त्रिकोण हमें संसार के अग्रणी देशों में अपना एक उच्च स्थान दिलाने में सहायक हो सके।

संयोग से इंडियन साइंस कांग्रेस के जनवरी 2003 अधिवेशन में 'विज्ञान और तकनीकी (2003)' नीति की घोषणा की गई है, जो अब तक प्रचलित 'विज्ञान नीति (1958)' तथा 'तकनीकी नीति (1983)– का समिश्रण है, तथा एक नई परम्परा का द्योतक है। उपर्युक्त दोनों पृथक नीतियों के प्रतिपादन एवं प्रगति से मैं निकट सम्बन्धित रहा हूँ। इसी नई विज्ञान तथा तकनीकी नीति का एक संक्षिप्त वर्णन 'करेंट साइंस' पत्रिका के 10 जनवरी 2003 अंक में डॉ0 निरूपा सेन ने पृष्ठ 13 पर प्रस्तुत किया है।

प्रोफेसर एमेरिटस
राजस्थान विश्वविद्यालय
4/682, जवाहर नगर, जयपुर

पृष्ठ 7 का शेष ......

सकता है, बल्कि खराब हो चुके अंगों का फिर से निर्माण भी किया जा सकता है।

6. क्लोनिंग के कारण उन महिलाओं की परेशानी समझी जा सकेगी जिन्हें बार–बार गर्भपात हो जाता है।

7. ऐसे अभिभावक भी क्लोनिंग का उपयोग करके स्वस्थ बच्चे को जन्म दे सकते हैं जिनमें 'डिफेक्टिव जीन' हों।

8. क्लोनिंग के द्वारा यह भी जाना जा सकेगा कि किस तरह एक ब्लास्टुला से बना कोशिकाओं का गुच्छा या मोरुला गर्भाशय की दीवार से जुड़ता है। असल में मोरुला का विकास कैंसर कोशिकाओं की तरह होता है, और विशेषज्ञों का मानना है कि अगर मानव डिंबों के विभाजन को रोकने की कोई तकनीक मिल जाती है, तो कैंसर के विकास को भी रोका जा सकेगा।

क्लोनिंग से हानियाँ

1. 'डॉली' नामक भेड़ को पैदा करने वाले डॉ0 विल्मुट का मानना है कि मानव क्लोनिंग मानव उत्पत्ति में नर की आवश्यकता को समाप्त कर देगी। क्लोनिंग के लिए जिस कोशिका से केन्द्रक लिया जाता है, वह नर या मादा में से किसी का भी हो सकता है।

2. क्लोनिंग का उपयोग कर व्यक्ति किसी एक लिंग के बच्चों को पहले ही नष्ट करने का काम करता है, जिससे बाद में गर्भपात कराने की नौबत ही न आए।

3. कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि विकासशील और विकसित देशों में इस तकनीक का उपयोग कर लड़कियों को जन्म से पहले ही समाप्त करने का काम किया जाएगा।

4. कामपिपासु लोग युवतियों के क्लोन तैयार करवाएँगे और मनमाना नारी देह–व्यापार करेंगे/कराएँगे। अमीर लोग अपने मनमाने स्वार्थों को पूरा करने के लिए मान क्लोनिंग को अपना मुख्य साधन बना लेंगे। तब सामाजिक परिस्थितियाँ इतनी भयंकर होंगी, इसकी

कल्पना आसानी से की जा सकती है।

5. मानव क्लोनिंग हमें उस युग में ले जाएगा जिसमें नर व नारी के संसर्ग मिलन की कोई आवश्यकता नहीं होगी। गृहस्थी की गाड़ी के दोनों पहियों (पति व पत्नी) में से एक अलग हो जाएगा।

6. मानव मानवीय संवेदनाओं के मामले में एकदम शून्य हो जाएगा। अपने स्वार्थ के लिए मानव अपनी जीवित प्रतिकृति यानी हमशक्ल पैदा करवा कर उसकी हत्या करवाएगा उसके अंगों से अपने स्वास्थ्य को बनाए रखेगा।

7. जैविक अंग तैयार करने के नाम पर अनेक जीवों की बलि देना आम बात हो जाएगी।

8. अपराधी लोग क्लोन तैयार कर कानून नाम की चीज को आसानी से अंगूठा दिखाएँगे।

9. क्लोनिंग की प्रक्रिया के दौरान कई भ्रूण नष्ट हो जाते हैं जिनका उपयोग नहीं होता है।

10. विश्व के अधिकांश वैज्ञानिक क्लोनिंग को अनैतिक मानते हैं और उनका कहना है कि इसका उपयोग व्यक्ति अपनी स्वार्थ सिद्ध के लिए अधिक करेगा।

प्रतिक्रियाएँ

मानव क्लोनिंग की विश्वव्यापी निंदा हुई है, यहाँ तक कि क्लोन के आविष्कारक, 'डॉली' नामक भेड़ को पैदा करने वाले वैज्ञानिक डॉ0 विल्मुट ने भी मानव क्लोन को अनैतिक अपराध करार दिया है।

मानव क्लोनिंग को लेकर अमेरिका में कई बार जनमत संग्रह कराया गया और पाया गया कि 93 प्रतिशत अमेरिकी लोगों ने क्लोनिंग को बिल्कुल अनुचित करार दिया। 67 प्रतिशत अमेरिकियों ने तो भेड़, बकरी, बन्दर आदि की क्लोनिंग को भी अनुचित बताया। इस पोल में 74 प्रतिशत लोगों का मानना था कि मानव क्लोनिग ईश्वर की इच्छा के खिलाफ है, जबकि 19 प्रतिशत लोगों ने उसे सही माना।

ब्रिटिश बुलेटिन ऑफ मेडिकल एथिक्स के रिचर्ड निकोल्सन का कहना था कि क्लोनिंग पर किए जा रहे शोध अपने सर्वनाश के बीज बोने के समान हैं।

अमेरिका की लिबर्टेरियन पार्टी का मानना है कि क्लोनिंग 20वीं शताब्दी का सबसे महत्वपूर्ण 'मेडिकल ब्रेकथ्रू' है। राजनीतिज्ञों के पास नए मानव जीवन को वीटो करने का अधिकार नहीं होना चाहिए, और सरकार को भी क्लोनिग पर प्रतिबंधन नहीं लगाना चाहिए।

बायोटेक्नोलाजी इंडस्ट्री आर्गेनाइजेशन के कार्ल फल्बॉम ने फरवरी 1997 में कहा था कि क्लोनिंग का उद्देश्य मानवों पर इसका उपयोग करना कतई नहीं होना चाहिए, लेकिन अगर यह होता है, तो इसे कानून के जरिए रोका जाएगा।

इकोनॉमिक्स ट्रेड्स के जेरेमी रिफकिंग का कहना है कि मानव क्लोनिंग पर विश्वव्यापी प्रतिबंध लगना चाहिए। वे विश्व भर के 300 धार्मिक और एथिकल संगठनों का भी नेतृत्व करते हैं।

मानव क्लोनिंग पर वैज्ञानिकों के बीच गहरे मतभेद हैं। मानव क्लोनिंग का रॉयल व पानासे जावेस जैसे जाने–माने वैज्ञानिकों ने यह कहते हुए समर्थन किया है कि क्लोनिंग से मानव की बढ़ती उम्र की प्रक्रिया को रोका जा सकेगा, तथा क्लोनिंग दिल के मरीजों, कैंसर के रोगियों, निःसंतान दम्पतियों के लिए वरदान साबित होगी, और विलुप्त होने के कगार पर पहुँचे जीव–जन्तुओं को भी बचाया जा सकेगा, वहीं दूसरी तरफ डॉ0 विल्मुट जैसे असंख्य वैज्ञानिकों ने मानव क्लोनिंग को मानव के लिए परमाणु बम से भी कई गुना घातक बताया है।

भारत सरकार के जैव प्रौद्योगिकी विभाग की सचिव श्रीमती डॉ0 मंजु शर्मा के अनुसार भारत मानव क्लोनिंग को हितकर नहीं मानता।

स्नातकोत्तर शिक्षक (जीव विज्ञान)
जवाहर नवोदय विद्यालय करीरा
जिला–महेन्द्रगढ़ हरियाणा–123027

ऊर्जा स्रोत : कोल बेड मीथेन

शिवेन्द्र कुमार पांडे

कोयला खनन कार्य कई प्रकार की पर्यावरण समस्याओं का जनक होता है, जैसे भूमि निम्नीकरण व स्थानीय प्राणियों/वनस्पतियों का नाश, भूमिगत जल प्रदूषण, ध्वनि व वायु प्रदूषण। वायु प्रदूषण का मुख्य स्रोत मीथेन गैस होती है, जो कोयला संस्तरों में 'एक अणुक अवस्था' में समायी रहती है। कोयला संस्तरों के अंतर में इसका समावेश, वनस्पतियों से कोयलाकरण प्रक्रिया के दौरान होता है, जिसे प्राकृतिक रूप से निर्मित पानी, दाब के अंतर्गत अधिशोषित रखता है। इसलिए विश्व भर के सभी कोयला संस्तरों में मीथेन गैस उपस्थित रहती है, केवल उसकी मात्रा में अंतर होता है। अब जैसे ही खनन कार्य आरंभ किया जाता है, दरार–फोड़न पैदा होने पर गैस विशेषण क्रिया सक्रिय हो जाती है और खान के भीतर गैस भरने लगती है। अब चूँकि मीथेन एक अति विस्फोटक गैस है, इसलिए खनन कार्य में लगे जान–माल की सुरक्षा के लिए इसे संवात व्यवस्था द्वारा तनु करके वाले वायुमण्डल में बिखेर दिया जाता है। ज्यादा गैस युक्त खानों में अधिक सुरक्षा के लिए खर्चीले 'फ्लेम प्रूफ' इलेक्ट्रिकल उपकरणों का उपयोग किया जाता है अर्थात् कोयला खनन कार्य को सुरक्षित बनाये रखने के लिए एक अन्य प्राकृतिक ऊर्जा स्रोत को नष्ट कर दिया जाता है।

इस प्रकार मीथेन गैस के वायुमण्डल में बिखेर दिए जाने से कोयला खानों के समीप के क्षेत्र में पर्यावरण लगातार प्रदूषित होता रहता है क्योंकि मीथेन एक ग्रीन–हाउस गैस है। मीथेन द्वारा वायुमण्डल में तापमान को अवरुद्ध करने की क्षमता कार्बनडाइआक्साइड से 24.5 गुना अधिक होती है। विश्व तापमान वृद्धि में मीथेन गैस का योगदान लगभग 18 प्रतिशत है। इसलिए कार्बन डाइआक्साइड (66 प्रतिशत) के पश्चात् ये दूसरी महत्वपूर्ण ग्रीन हाउस गैस है। (नाइट्रोजन के आक्साइड 5 प्रतिशत, सी.एफ.सी. 11 प्रतिशत)। वायुमण्डल के भीतर कार्बन डाइआक्साइड का जीवन काल 120 वर्ष और मीथेन का 10 वर्ष होता है। एक अध्ययन के अनुसार वर्तमान से सन् 2050 के बीच मीथेन उत्सर्जन को 10 प्रतिशत कम करने के प्रयास का वही प्रभाव होगा जो कि कार्बन डाइआक्साइड उत्सर्जन को सन् 1990 के स्तर पर बनाए रखने के लिए किया जाएगा।

व्यापारिक स्तर पर मीथेन गैस की प्राप्ति तेल व प्राकृतिक गैस के शोधन से की जाती है, जिसे हम सब रसोई गैस के नाम से जानते हैं। इसके उत्पादन का एक अन्य तरीका है– कोयला गैसीकरण। कोल इन्डिया लिमिटेड ने कोलकाता के समीप धानकुनी में कोयला गैसीकरण संयंत्र स्थापित किया है, जो कोलकाता व दुर्गापुर को पाइप–लाइनों के माध्यम से गैस आपूर्ति करता है!

विश्व में मीथेन उत्सर्जन (1990) के स्रोत तालिका–1 में दर्शाए गए हैं–

क्र.	स्रोत	परिमाण (टैराग्राम)
1	पशु विष्ठा	65–100
2	धान की खेती	60–100
3	प्राकृतिक तेल व गैस	32–68
4	प्राकृतिक जलावन	28–51
5	अपशिष्ट द्रव्य	29–40
6	कोयला	24–40
7	लैण्ड फिल्स	20–28
8	खाद	8–18
9	लघु उद्योग	4
(1 **टैराग्राम** = 1.49 बिलियन क्यूबिक मीटर)		

तालिका–1 की समीक्षा स्पष्ट दर्शाती है कि मीथेन उत्सर्जन में कोयला खानों का योगदान 10

प्रतिशत है और 2) अन्य स्रोतों की अपेक्षा कोयला क्षेत्रों में मीथेन उत्सर्जन को नियंत्रण में लाना ज्यादा आसान है क्योंकि उनके स्थान सुनिश्चित है। उरा पर कोयला खनन कार्य को सुरक्षित बनाए रखने के लिए मीथेन गैस निकासी तो हमेशा करती रहनी होती है। इसलिए वायुमण्डल में बिखेरी जाने वाली इस गैस को इकट्ठा कर उपयोग किया जा सके तो अतिरिक्त लाभ मिलने के साथ साथ पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम संभव हो सकेगी। इस सोच ने कोयला संस्तरों में समायी गैस को व्यापारिक स्तर पर इकट्ठा करने की प्रौद्योगिकी विकसित करने के लिए वैज्ञानिकों को प्रेरित किया है।

अब पिछले दो दशकों से कोयला संस्तरों में मीथेन गैस का उत्पादन व्यापारिक स्तर पर होने लगा है, विशेषकर अमेरिका में, जहाँ इसका उत्पादन कोयला खनन के पूर्व व दौरान भारी मात्रा में किया जा रहा है। व्यापारिक हलकों में इसे 'कोल बेड मीथेन' सी.बी.एम. कहा जाता है।

व्यापारिक स्तर पर मीथेन गैस प्राप्त करने का मुख्य स्रोत तेल व प्राकृतिक गैस भण्डार हैं, पर इनमें व कोयला संस्तरों में गैस भंडार स्थापन की शैली भिन्न होती है। तेल व प्राकृतिक गैस का प्रजनन 'शेल व चिकनी मिट्टी' में होता है, पर भण्डार स्थापन के लिए वे चूना पत्थर व सैन्डस्टोन जैसी दूसरी चट्टानों में स्थानान्तरित हो जाते हैं। इसके विपरीत कोयला संस्तरों की मीथेन गैस का निर्माण स्थल ही उनका भण्डार स्थल भी होता है। इसके अलावा, कोयला संस्तरों में मीथेन गैस एक अणुक अवस्था में समायी होती है। जबकि तेल व गैस भण्डार स्वतंत्र रूप में पाए जाते हैं। कोयले की संरंध्रता मीथेन गैस में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कोयले की कुल संरंध्रता का 70 प्रतिशत भाग आण्विक स्तर का होता है और एक परम्परागत गैस भण्डार के समान होता है जिसमें 20 प्रतिशत सरंध्रता के साथ 100 प्रतिशत गैस संतृप्त हो। इस भिन्न क्रियाविधि के फलस्वरूप प्राकृतिक तेल व गैस भण्डारों की तुलना में कोयला संस्तरों के भीतर ज्यादा मात्रा में गैस संचय की क्षमता होती है।

कोयला संस्तरों में मीथेन गैस का उत्पादन मुख्यतः गैस–विशोषण द्वारा किया जाता है। इसके लिए कोयला संस्तरों तक छिद्र निर्माण द्वारा द्रवचालित फोड़न पैदा कर उनके भीतर स्वतः रूप में उपस्थित पानी को बाहर ढकेला जाता है ताकि मीथेन गैस अणु दबावरहित होने पर विशोषण क्रिया आरंभ हो जाए। इस कारण इन नलकूपों से काफी समय तक केवल पानी ही बाहर निकलता रहता है, तब कहीं जाकर गैस बाहर आती है। इसके विपरीत पृथ्वी के अंतर में तेल व प्राकृतिक गैस भण्डार प्रायः एक साथ पाये जाते हैं। नीचे कच्चा तेल (क्रूड) और ऊपर में गैस। पर कई भण्डारों में केवल गैस पायी जाती है और गैस भण्डार भी कई प्रकार के होते हैं– पानी व कच्चे तेल के साथ घुले मिले, तरल रूप व स्वतंत्र गैस। इसे अलावा प्रायः सभी प्राकृतिक गैस भण्डार अत्यधिक दबाव के अंतर्गत स्थापित रहते हैं। इसलिए जैसे ही वेधन पाइप इन तक पहुँचते हैं गैस इन पाइपों के माध्यम से अचानक फूट कर भू–सतह पार होने लगती है और कई बार उसके तत्काल उपयोग के लिए व्यवस्था (संग्रहण, वितरण आदि) न होने पर, ऐसे स्थानों में गैस को जलाना (फ्लेयर) पड़ता है। इस प्रकार गैस को जला देने से एक बहुमूल्य ऊर्जा स्रोत का नुकसान होने के अलावा पर्यावरण प्रदूषण भी फैलता है। लेकिन सी.बी.एम. उत्पादन में ऐसी कोई समस्या नहीं है क्योंकि उसे आवश्यकतानुसार नियंत्रित किया जा सकता है। अर्थात् कृत्रिम रूप से उत्प्रेरित गैस विशोषण क्रिया को रोक देने पर सी.बी. एम. उत्पादन पर रोक लगायी जा सकती है और भविष्य में आवश्यकता होने पर उसे पुनः सक्रिय किया जा सकता है।

अमेरिकी अनुभवों से प्रभावित होकर विश्व के कई कोयला उत्पादक देशों में सी.बी.एम. उत्पादन के प्रयास आरंभ किए गए हैं, जिनमें भारत भी शामिल है। आशा की जा सकती है कि 21वीं सदी में प्रवेश के साथ भारत में सी.बी.एम. उत्पादन होने लगेगा, जिसके माध्यम से कुछ अतिरिक्त बिजली उत्पादन संभव होगा, विशेषकर कोयला क्षेत्रों में जहाँ बिजली की आपूर्ति का स्तर कुछ अनियमित है। एक 50 मेगावाट बिजली संयंत्र चलाने के लिए लगभग 3 लाख क्यूबिक मीटर

सी.बी.एम. प्रतिदिन की आवश्यकता होती है। भारतीय कोयला क्षेत्र, आकार में छोटे होने पर भी इस स्तर पर लम्बे समय तक सी.बी.एम. उत्पादन करने में सक्षम प्रतीत होते हैं। भारतीय हाइड्रोकार्बन रिसर्च इंस्टीट्यूट द्वारा वर्ष 1997 में प्रस्तुत एक अध्ययन के अनुसार भारत में 1029.5 बिलियन क्यूबिक मीटर सी.बी.एम. भण्डार कोयला क्षेत्रों में अवस्थित हैं। पर यह एक प्रारंभिक अनुमान मात्र है क्योंकि इनका आकार केवल गवेषण से प्राप्त कुछ प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष आँकड़े हैं, जैसे–

1. झरिया की कुछ खानों से प्राप्त गैस मिश्रणों में 94–95 प्रतिशत मीथेन गैस की उपस्थिति।

2. झरिया व रानीगंज में गवेषण छिद्रों से गैस निकलना। रानीगंज में एक दशक पूर्व निर्मित वेधन छिद्रों से वर्तमान में भी गैस का निकलते रहना।

3. पूर्वी बोकारो, सोहागपुर, सतपुरा, कन्हान, आदि कोयला क्षेत्रों में इसी प्रकार का गैस प्रदर्शन।

4. पर्वतपुर खण्ड (झरिया) के कोयला संस्तरों में परीक्षणों (1990–91) द्वारा 8 मीटर^3/टन से ज्यादा गैस होने की जानकारी, जिसकी दर 1.3 मीटर^3/टन के हिसाब से प्रत्येक 100 मीटर गहराई पर बढ़ती है। 800 मीटर गहराई से प्राप्त नमूनों में सबसे ज्यादा गैस 14.93 मीटर^3/टन मापा जाना। इस ढंग की जाँच अब अन्य कोयला क्षेत्रों में भी की जा रही है।

5. भारत में कोयला खनन मुख्यतः 300 मीटर गहराई के भीतर ही सीमित है, पर पिछली सदी में घटित खान दुर्घटनाओं (जिनमें 10 से ज्यादा जानें गई हैं) के आँकड़े दर्शाते हैं कि लगभग 50 प्रतिशत दुर्घटनाओं का कारण गैस विस्फोट था। ज्ञात रहे कि कोयला संस्तरों की गहराई बढ़ने पर गैस की मात्रा भी साथ–साथ घटने लगती है।

इसलिए सी.बी.एम. उद्योग की आवश्यकता के अनुरूप गवेषण आँकड़े इकट्ठा करने पर इन भण्डारों में वृद्धि की प्रबल संभावना स्पष्ट दिखाई देती है। इसका कारण है कि सी.बी.एम. उत्पादन एक नई उभरती तकनीक है व प्रौद्योगिकी विकास पर आधारित है।

वास्तविकता यह है कि भारत में कोयला खनन परियोजना निर्माण के लिए किए गए गवेषण के दौरान, जाँच–परख सी.बी.एम. उद्योग की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं की गई है (जैसे परावर्तकता, मैसरल संघटन, परिक्षेपित जैव पदार्थ, पारगम्यता व सरंध्रता, अधिशोषित पानी के गुण, रिजर्वायर इंजीनियरिंग आदि)। क्योंकि कोयला खनन परियोजना निर्माण के लिए इन्हें आवश्यक नहीं समझा गया है। इसलिए सभी भारतीय कोयला क्षेत्रों में सी.बी.एम. उत्पादन के लिए व्यापक स्तर पर गवेषण कार्य दुबारा करना पड़ेगा, उन खण्डों में भी जहाँ खनन परियोजना निर्माण के लिए गवेषण कार्य किया जा चुका है। पर, यह कोई अनहोनी बात नहीं है, क्योंकि यह उद्योग पिछले दो दशकों के विकास का परिणाम है। अमेरिका में कोयला खनन कार्य के लिए 17,000 वेधन छिद्र सैन–जुआन घाटी की फ्रूटलैण्ड शैल समूहों में किए जा चुके थे, जब कोयला संस्तरों को गैस भण्डार भी समझा जाने लगा और सी.बी.एम. प्राप्त करने के लिए दुबारा गवेषण कार्य आरंभ किया गया।

अब चूँकि यह प्रौद्योगिकी आधारित उद्योग है इसलिए गैस निकासी के लिए उन्नत तकनीक विकसित होने पर सी.बी.एम. उत्पादन में वृद्धि होगी। कुछ विशेष जीवाणु भी मीथेन गैस के प्रजनन में सक्षम होते हैं, जैसे– जल अपघटनीय किण्वणीय जीवाणु, सिन्ट्रोफिक ऐसिटोजनिक जीवाणु, मीथेनोजनिक जीवाणु आदि। इन जीवाणुओं की मीथेन गैस प्रजनन क्षमता का लाभ उठाने के लिए अमेरिकन वैज्ञानिक कोयला संस्तरों में जीवाणु अन्तःक्षेपण कर मीथेन गैस के प्रजनन को बढ़ाने में लगे हुए हैं। कोयला संस्तरों में पाए जाने वाले जैव यौगिक (मोम, द्रवण, रसायनिक आर्द्र गैस) का मीथेन में कायान्तरण अलग–अलग क्रियात्मक गुणों वाले जीवाणुओं द्वारा सम्भव है। जिनके लिए उल्लिखित जैव यौगिक मुख्य भोजन बन सकते हैं। वास्तविक परीक्षणों से जानकारी मिली है कि कोयलों का भूमिगत अवस्था में, इस प्रकार का कायान्तरण संभव है। इस प्रकार के जीवाणु अन्तःक्षेपण द्वारा मीथेन प्रजनन वृद्धि तकनीक को 'माइक्रोबियली इन्हान्स्ड् कोलबेड मीथेन' (मीकोम) नाम दिया गया है। इसके सफल होने पर विश्व के सभी कोयला क्षेत्रों से मीथेन गैस भारी मात्रा

में प्राप्त की जा सकेगी, भारत के उन कोयला क्षेत्रों से भी जहाँ कोयला भण्डार अधिक गहराई या सख्त ट्रैप–राक्स के नीचे अवस्थित हैं (बीरभुम, पेन्च, डेकन–सिंक्लाइज आदि) और वर्तमान में विदित खनन तकनीकों के अंतर्गत जिनका व्यापारिक स्तर पर उत्पादन अभी अलाभकारी है। दूसरी ओर लिंगनाइट भण्डारों के खनन की कठिनाइयों से तो सभी परिचित हैं, इसलिए मीकोम की सफलता इनके दोहन का मार्ग भी प्रशस्त करेगी।

सी.बी.एम. उत्पादन प्रौद्योगिकी, कोयला व तेल/गैस की मिली जुली मध्यस्थ तकनीक है, जिसके माध्यम से अंततः गैस उत्पादन होता है। इसलिए अमेरिका में गैस कम्पनियाँ ही सी.बी.एम. उद्योग में कार्यरत हैं। पर अमेरिका व भारत में परिस्थितियाँ एक समान नहीं है। अमेरिका में विश्व के 28 प्रतिशत कोयला भण्डार पाये जाते हैं, पर भारत में मात्र 1 प्रतिशत। दूसरी ओर अमेरिकी एकल कोयला क्षेत्रों का विस्तार अभी भी बहुत बड़े भूभाग पर फैला हुआ है जिसके कारण वहाँ प्रत्येक सी.बी.एम. परियोजना 1000 वर्ग किलोमीटर व ज्यादा क्षेत्र का अधिग्रहण कर चलाई जा रही है। इसके विपरीत भारत में कोयला क्षेत्रों का आयाम बहुत छोटा होने के बावजूद, भारतीय कोयला देश में आवश्यक ऊर्जा विकास का आधार स्तम्भ है, जो विश्वसनीयता के साथ दीर्घकालीन ऊर्जा माँग की आपूर्ति में सक्षम एकमात्र स्वदेशी ऊर्जा स्रोत भारत में उपलब्ध है, जिसके कारण सभी भारतीय कोयला क्षेत्रों में खनन कार्य कम गहराई की ऊपरी संस्तरों में किया जा रहा है (मुख्यतः 300 मीटर गहराई के भीतर)। इसलिए भारत में सी.बी.एम. उत्पादन को व्यापारिक स्तर पर सफल बनाने के लिए इन खननरत क्षेत्रों को मिलाकर ही परियोजना निर्माण करना होगा। लेकिन भारत में कोयला खानें मुख्यतः कोल इण्डिया लिमिटेड के अधिकार क्षेत्र में आती हैं।

अब चूँकि सी.बी.एम. एक स्वतंत्र गैस भण्डार न होकर, कोयला संस्तरों का एक अभिन्न अंतरंग उपोत्पाद है, यह उचित प्रतीत होता है कि भारत में सी.बी.एम. विकास कार्य कोल इण्डिया लिमिटेड को सौंपा जाये, न कि तेल व प्राकृतिक गैस विभाग द्वारा– जैसा सरकार के निर्देश पर किया जा रहा है।

सरकार द्वारा इस प्रकार के नीति परिवर्तन का चौतरफा लाभ भारतीय कोयला उद्योग को मिलेगा। सी.बी.एम. उत्पादन के लिए कम दूरी पर बड़े व्यास के वेधन छिद्रों के निर्माण से प्राप्त गवेषण आँकड़ों (कोयला खनन परियोजना निर्माण के लिए किए गवेषण से कहीं अधिक) की व्याख्या खनन परियोजना निर्माण को कहीं अधिक विश्वसनीयता प्रदान करेगी, वह भी बिना अतिरिक्त खर्च के। इसके अलावा बड़े व्यास के इन छिद्रों का खनन परियोजना से डबजोड़ कर खानों से पानी निकासी, बालू भरण, बिजली व टेलीफोन केबल खान के भीतर ले जावे, संवातन, आदि के लिए उपयोग, बिना अतिरिक्त खर्च किए संभव हो सकेगा।

फिर सी.बी.एम. उत्पादन प्रौद्योगिकी आधारित है, जिसकी भारत को अभी भी तलाश है। इसी कारण से, भारत में सी.बी.एम. उत्पादन में विलंब हो रहा है। इस प्रकार के परिदृश्य में यह एक समझदारी भरा कार्य होगा कि सी.बी.एम. उत्पादन की बागडोर एक ऐसे उद्योग के हाथ में दी जाए, जो व्यापारिक स्तर पर इसका सर्वाधिक लाभ उठा सकता है– अर्थात् भारतीय कोयला उद्योग।

भारत में कुल व्यापारिक ऊर्जा माँग की आपूर्ति का मुख्य स्रोत स्वदेशी कोयला है, जिसका योगदान वर्ष 2001–02 में 59 प्रतिशत था। भारतीय ऊर्जा क्षेत्र में कोयले का वर्चस्व अगले कई दशकों तक बना रहेगा। इसका मुख्य कारण है कि अन्य भारतीय ऊर्जा स्रोतों की अपेक्षा कोयला भण्डार भारत में सहजता से उपलब्ध हैं। इसीलिए भारतीय ऊर्जा के लिए यह सबसे सस्ता विकल्प भारत के पास है। इसीलिए भारतीय ऊर्जा परिवेश में कोयला 'श्री भरोसेमन्द' का स्थान ग्रहण कर चुका है। कोयले के इस महत्व को समझते हुए, यह राष्ट्रीय हित में होगा कि सी.बी.एम. के विकास व उत्पादन का कार्य कोयला उद्योग के हाथों में दिया जाए।

छवि निकुंज, बाँस बंगलो कम्पाउण्ड
चौथी क्रासिंग, राँची रोड
पुरुलिया, प0 बंगाल-723101

महामानव राबर्ट बॉयल

डॉ० श्रवण कुमार तिवारी

वर्तमान वैज्ञानिक युग में वैज्ञानिकों के विषय में आम धारणा यह है कि वे ईश्वर और धर्म से कोई सरोका नहीं रखते, परन्तु यह सच नहीं है। विज्ञान की मूल उपलब्धियाँ मानव जाति की सुख–सुविधा के लिए ही हैं, भले ही कुछ लोग इन उपलब्धियों का दुरुपयोग करके, उन्हें न केवल समस्त जीवजगत के लिए विनाशकारी बना कर विज्ञान को कलंकित भी कर दें। परन्तु वैज्ञानिक शोध में समर्पित वैज्ञानिक तो प्रकृति के रहस्यों की खोज करके उनका उपयोग मानव हित में करना ही अपना कर्तव्य समझता है। इस खोज में वह इतना समर्पित एवं तन्मय रहता है कि उसे अलग से ईश्वर को याद करने या उसके अस्तित्व के संबंध में चिंतन करने की कोई आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती। दूसरी मुख्य बात यह है कि सर्वभावेन ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करके उसके प्रति समर्पित हो जाने पर प्रकृति के रहस्यों के प्रति कोई जिज्ञासा शेष नहीं रह जाती। जब मनुष्य यह मान लेता है कि इस अखिल ब्रह्माण्ड का स्रष्टा एवं नियंता एकमात्र परमेश्वर ही है तो फिर गुरुत्वाकर्षण जैसे नियम से उसका क्या लेना–देना, विद्युत–चुम्बकीय तरंग के प्रति उसे क्या जिज्ञासा होगी, और प्रकृति के रहस्यों को जानने की उत्सुकता उसके मन में क्यों पैदा होगी ? परन्तु सारे संसार में फैले हुए तमाम ईश्वरवादी धर्माध्यक्ष विज्ञान की उपलब्धियों की आलोचना करते हैं पर अधिकांशतः वे उन्हीं का उपयोग भी करते रहते हैं। ज्ञातव्य है कि समर्पित वैज्ञानिक भी विज्ञान के विनाशकारी उपयोगों के प्रति अत्यंत चिंतित हैं तथा उनके निराकरण के उपाय ढूँढने में लगे हैं।

इन विचारों के परिप्रेक्ष्य में यदि वैज्ञानिक प्रगति के इतिहास पर ध्यान दिया जाए तो हमें ऐसे वैज्ञानिक भी मिलेंगे जिन्होंने पूर्णतः धार्मिक दृष्टि रखते हुए भी अपना जीवन वैज्ञानिक शोधकार्यों में बिताया।

विज्ञान के इतिहास में सत्रहवीं सदी के आरंभ में इंग्लैंड में एक ऐसे ही महामानव का जन्म हुआ था जिन्हें किसी संत, महात्मा, पादरी या धर्माध्यक्ष के रूप में नहीं, वरन् एक वैज्ञानिक के रूप में याद किया जाता है : वे थे राबर्ट बॉयल, जिनके नाम से ख्यात 'बायल का नियम', प्रायः भौतिक विज्ञान के प्रत्येक छात्र को हाईस्कूल स्तर पर ही पढ़ने को मिलता है। एक विज्ञान लेखक ने राबर्ट वॉयल के विषय में लिखा है, "उनका देवदूतों जैसा आचरण, निष्कलंक व्यक्तित्व और मानवता की प्रतिष्ठा एवं भव्यता के प्रति उनके उच्च विचार– ये ही सब समस्त मानव जाति के लिए अनुकरणीय थे। उनके मन में मानवता के उत्थान के प्रति एक दैवी आस्था थी। वे इस कार्य को 'दानशीलता' के माध्यम से, वैज्ञानिक प्रगति के आधार पर पूरा करना चाहते थे। उनकी गिनती पुनर्जागरण काल के प्रमुख कर्णधारों में की जाती है।

राबर्ट बॉयल के पूर्वज इंग्लैण्ड के रहने वाले थे। वे लोग सम्पन्न जागीरदार थे। बॉयल के पिता ने कैम्ब्रिज में शिक्षा पाई थी। सन् 1588 ई0 में वे इंग्लैंड छोड़कर आयरलैंड चले गए थे। वहाँ पर भी उन्होंने पर्याप्त धन–सम्पत्ति और भूमि अर्जित करके लिसमोर गाँव में एक साधन–सम्पन्न जागीर बना ली थी। राबर्ट

बॉयल का जन्म लिसमोर की इसी जागीर वाले भवन में 25 जनवरी सन् 1627 ई0 को हुआ था। वे अपने पिता की चौदहवीं संतान तथा सातवें पुत्र थे। बचपन से ही वे सुकोमल, सुन्दर, मृदुभाषी और दयालु थे। उनकी प्राथमिक शिक्षा घर पर 'ट्यूटर' से प्राप्त हुई, उन्हें स्कूल नहीं भेजा गया। आठ वर्ष की आयु में उनको एक अन्य ट्यूटर से पढ़ने के लिए एटॉन भेजा गया। पढ़ने में ही उनका मन अधिक रमता था, खेलना–कूदना उन्हें पसंद नहीं था। एटॉन में वे चार वर्षों तक रहे। इसी दौरान उनके पिता ने दूसरे गाँव में भूमि खरीद कर एक नई जागीर बना ली जो डोरसेट सायर में थी, जिसका नाम स्टालब्रिज था। पिता ने बॉयल को स्टालब्रिज भेज दिया। कुछ दिनों तक उन्हें यहीं रहना पड़ा। 1638 में 12 वर्ष की आयु में उन्हें अपने बड़े भाई के पास रहकर एक स्विस ट्यूटर से अपनी पढ़ाई पूरी करने के लिए जेनेवा, स्विट्जरलैण्ड भेज दिया गया।

जेनेवा का निवास उनके जीवन का महत्वपूर्ण काल रहा, क्योंकि इसी दौरान जेनेवा में एक भीषण विद्युतीय तूफान आया जिससे जन–धन की भारी क्षति हुई। इस तूफान के हृदयविदारक परिणाम को देखकर बालक राबर्ट के हृदय को गहरा धक्का लगा। उन्होंने इसे एक दैवी प्रकोप समझा और धरती तथा प्राणियों को इस हादसे से बचाने के लिए उनके मन में ईश्वर के प्रति गहरी आस्था उत्पन्न हो गई।

1642 में आयरलैंड में विद्रो हुआ। इससे बॉयल की पैतृक जागीर की काफी क्षति हुई। अनिश्चितता की इस स्थिति में दो वर्ष बीत गए। स्थिति में सुधार होने पर सन् 1644 में वे इंग्लैंड चले आए। इससे एक वर्ष पूर्व जनवरी में ही आइज़क न्यूटन का भी जन्म हो चुका था। इंग्लैण्ड आने पर राबर्ट बायल की भेंट एक पोलिश प्रोटेस्टेन्ट ईसाई सैमुएल हार्टबिल से हुई। बॉयल ने उन्हीं के मार्गदर्शन में अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया। सैमुएल शिक्षा के माध्यम से समाज सेवा और धर्म प्रचार का कार्य करना चाहता था। वह एक ऐसा दार्शनिक स्कूल खोलना चाहता था जिसमें वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा प्रकृति के रहस्यों की खोज और उनका अध्ययन किया जा सके। राबर्ट बॉयल को भी यह विचार बहुत पसंद आया और वे इस दिशा में जुट गए।

इंग्लैंड में अभी कुछ ही दिन बीते थे कि बॉयल के पिता जी का देहावसान हो गया। वे ही अपने पिता के उत्तराधिकारी थे अतः आयरलैंड की जागीर की देखभाल उन्हें ही करनी थी। तब तक वहाँ के हालात भी सुधर चुके थे। अतः उन्हें अपनी स्टालब्रिज स्टेट पर वापस आना पड़ा। जागीर की व्यवस्था के लिए यहाँ रहना आवश्यक था। यहाँ रह कर भी वे विद्याध्ययन में लगे रहे। उन्होंने यहाँ विज्ञान के विभिन्न विषयों– एनाटॉमी, मेडिसिन और प्रकृति दर्शन आदि का अध्ययन किया। यहाँ उन्होंने 9 वर्ष बिताए। इस बीच वे सैमुएल हार्टबिल से भी सम्पर्क बनाए रहे और इंग्लैंड में हो रही वैज्ञानिक प्रगति का समाचार लेते रहे। इस अध्ययन के दौरान उनको रसायन शास्त्र में विशेष रुचि जाग्रत हो गई। वे रसायन शास्त्र के कुछ प्रयोग भी करने लगे।

आयरलैंड से पुनः इंग्लैंड वापस आकर वे आक्सफोर्ड में रहने लगे। आक्सफोर्ड में वे 14 वर्षों तक रहे। यह उनके जीवन की स्वर्णिम अवधि कही जा सकती है। यहीं पर उन्होंने गैसों के गुणों का अध्ययन किया और तत्संबंधी अनेक महत्वपूर्ण प्रयोग भी किये। उनको वायु संबंधी प्रयोग करने की प्रेरणा जर्मनी के शहर मैग्डेबर्ग में, ओटो हॉन गैरिक द्वारा सन् 1657 में किए गए बहुचर्चित प्रयोग से मिली। इस प्रयोग में गैरिक ने धातु के दो खोखले अर्द्धगोले लिए थे जिन्हें आपस में डिब्बे की भाँति जोड़कर एक पूर्ण गोला बनाया जा सकता था। दोनों अर्द्धगोलों में बाहर की ओर मजबूत हुक लगे हुए थे जिनमें लम्बी जंजीर बाँध कर दोनों ओर छः–छः घोड़े जोते जा सकते थे। दोनों अर्द्धगोलों को आपस में वायुरुद्ध रूप से बंद करके, पूर्ण गोले के भीतर से, एक वायु–शोषक पंप से भीतर की हवा निकाल दी गई थी। अब दोनों ओर के घोड़े परस्पर विपरीत दिशाओं में बल लगाकर अर्द्धगोलों को पृथक नहीं कर सके थे। स्पष्ट है कि गोले के बाहर

वायुमंडलीय दाब इतना प्रबल होता है कि छः—छः घोड़े मिल कर भी उसके विरुद्ध अर्द्धगोलों को अलग नहीं कर सके।

इस प्रयोग से बॉयल को बड़ी प्रेरणा मिली। उन्होंने स्वयं अनेक प्रयोग करके वायु के द्रव्यमान तथा दाब का आकलन किया। इन प्रयोगों में उन्होंने वायु—चूषक पंप पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने अपने मित्रों की सहायता से बेहतर पंप बनाने वाले कुशल तकनीशियन की खोज की। संयोग से उन्हें एक ऐसा तकनीशियन मिल भी गया जिसका नाम राबर्ट कुक था। कुक ने राबर्ट बॉयल के घर पर ही रह कर एक बढ़िया पंप बनाया। कुक और बॉयल में गहरी दोस्ती हो गई। दोनों मिलकर वायु दाब संबंधी प्रयोग करते रहे। बाद में बॉयल ने कुक को रॉयल सोसाइटी का सदस्य भी बनवा दिया। इस से कुक को भी बड़ी ख्याति मिली।

बॉयल ने पदार्थों की परमाणविक संरचना का भी गहन अध्ययन किया। उन्होंने क्रिस्टलों की रचना समझने में रुचि ली और मूल्यवान पत्थरों एवं रत्नों की संरचना पर एक निबंध लिखा। वे अपने वैज्ञानिक प्रयोग स्वयं नहीं करते, वरन् प्रयोग करने के लिए किसी कुशल सहयोगी का चयन करते थे और समुचित निर्देश दे कर इच्छित उपकरण बनवाते तथा अपनी देखरेख में प्रयोग करवाते थे। परन्तु प्रयोग का प्रेक्षण वे स्वयं करते तथा परिणामों का विश्लेषण भी स्वयं करते थे। वे अपना शोधपत्र और विश्लेषण बोल—बोल कर अपने सचिव से ही लिखवाते थे। गैसों पर उन्होंने जो प्रयोग किए उनसे गैसों के अनेक गुणों की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त हुई। गैसों के दाब और आयतन के संबंध पर उन्होंने यह निष्कर्ष प्राप्त किया था कि, "स्थिर ताप पर गैस का आयतन उस पर लगाए गए दाब का उत्क्रमानुपाती होता है— अर्थात् दाब बढ़ाने पर आयतन घटता है।" यह नियम 'बॉयल के नियम' के रूप में जाना जाता है। इस नियम को एक दूसरे रूप में भी व्यक्त किया जाता है, "किसी निश्चित ताप पर किसी गैस का दाब परिवर्तित किया जाए तो दाब और आयतन का गुणनफल स्थिर राशि होती है ($P \times V = constant$)।

राबर्ट बॉयल का जन्म उस काल में हुआ था जब विज्ञान की कोई प्रतिष्ठा नहीं थी न ही लोगों को विज्ञान की कोई जानकारी थी। बॉयल की सामाजिक प्रतिष्ठा तथा उनके आकर्षक एवं अतिशय उदारवादी व्यक्तित्व के कारण विज्ञान को भी प्रतिष्ठा मिली। राबर्ट बॉयल इंग्लैंड की 'रॉयल सोसाइटी ऑफ लन्दन' के संस्थापक सदस्य माने जाते हैं और वे इसकी प्रथम कौंसिल के सदस्य रहे। अपने लंदन निवास के दौरान वे सोसाइटी के कार्यक्रमों में सक्रिय एवं नियमित रूप में भाग लिया करते थे। वे इस संस्था के सर्वाधिक प्रभावशीली सदस्य थे। उनके प्रशंसकों ने 1680 में उन्हें सोसाइटी का अध्यक्ष चुना, परन्तु उन्होंने यह कह कर इस पद को अस्वीकार कर दिया था कि, "रॉयल सोसाइटी के चार्टर के अनुसार इसके अध्यक्ष को एक विशिष्ट शपथ लेनी पड़ती है। यह एक ऐसा कार्य है जिसके लिए मेरी अंतरात्मा सहमत नहीं है।"

राबर्ट बॉयल में शिष्टाचार तो कूट—कूट कर भरा था। दूसरों की भावनाओं का ध्यान रखना उनके चरित्र की एक विशेषता थी। इसकी अभिव्यक्ति के रूप में उन्होंने व्यक्तिगत स्तर पर एक ऐसा कार्यक्रम चलाया था जिसमें वे जिज्ञासुओं को बुला कर उनसे मुक्त वार्तालाप करते और उनके विचार एवं दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करते थे। इस प्रकार के लोगों में उनकी इतनी अधिक रुचि थी कि उनके इस कार्यक्रम से प्रभावित होकर देश—विदेश के लोग उनसे मिलने आते थे। हालाँकि, उन्होंने स्वयं लिखा है कि "ऐसे अनेक लोग मेरा अमूल्य समय प्रायः व्यर्थ नष्ट कर देते हैं।" यही कारण था कि कुछ ही दिनों बाद उन्होंने यह कार्यक्रम बन्द कर दिया।

वैज्ञानिक प्रतिभा के धनी होते हुए भी राबर्ट बॉयल अंतरतम तक धार्मिक थे। कहा जाता है कि जब भी, किसी भी संदर्भ में 'ईश्वर' का नाम लेते तो तत्काल क्षणभर रुक कर वे ईश्वर के प्रति सम्मान अवश्य व्यक्त

शेष पृष्ठ 35 पर ......

ज्योतिष का विरोध कौन करता है ?

आचार्य वेदव्रत मीमांसक

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद नाम से जाने जाने वाले चार ग्रन्थ संसार के आदि ग्रन्थ हैं। ये विद्या विज्ञान के भण्डार हैं। आदि विद्वान, मानव संविधान निर्माता महर्षि मनु से लेकर महर्षि दयानन्द सरस्वती पर्यन्त सब ऋषि, मुनि, विद्वान एवं देशी–विदेशी आधुनिक वैज्ञानिकों ने उनकी सप्रमाण प्रशंसा की है।

वेदों में समस्त विद्याएँ मानी एवं सिद्ध की जाती हैं। अतः वेदों में ज्योतिष की विद्यमानता सिद्ध होती है। इतना ही नहीं, मुझे तो यहाँ तक प्रतीत होता है कि समस्त वेदों में कहीं प्रत्यक्ष और कहीं परोक्ष रूप से ज्योतिष विद्यमान है। इसको संक्षेप में बतलाने के लिए मैं एक दो उदाहरण उपस्थित करता हूँ।

यजुर्वेद का 40वाँ अध्याय अध्यात्मविद्या प्रधान माना जाता है। इसको आध्यात्मिक विद्या के भण्डार केनादि दश उपनिषदों का मूल माना जाता है। किन्तु इसमें भी ज्योतिष विद्या सम्बन्धी पराकोटि के मौलिक सिद्धांत विद्यमान हैं। इस अध्याय के प्रथम मन्त्र का पूर्वार्द्ध निम्न है–

ईशा वास्यम् इदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।

इसमें संसार के दो पदार्थों के विषय में कहा गया है।

1. एक संसार को आच्छादित करके एवं संसार को नियमित, नियन्त्रित करने वाला एकमात्र चेतन पदार्थ परमेश्वर है।

2. दूसरा गतिशील जड़ जगत् है। यहाँ जड़ जगत् को बतलाते हुए एक अति महत्वपूर्ण गति सिद्धांत को व्यक्त किया गया है कि संसार गतिशील है। पृथिवी सूर्य चन्द्रादि सब पदार्थ गतिशील हैं इसलिए संसार को जगत् कहा जाता है। इसके साथ यह भी बतलाया कि जो पदार्थ चर्मचक्षुओं के द्वारा देखने पर स्थिर–स्थितिशील दिखते हैं वास्तव में वे ही नहीं उनमें विद्यमान एक–एक अणु गतिशील है। इसके द्वारा वेद यह बतलाना चाहता है कि संसार के समस्त जड़ पदार्थ और उनमें विद्यमान अणु–अणु गतिशील हैं।

मुण्डकोपनिषद् में परमेश्वर के द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति के प्रसंग में कहा गया है कि उस अक्षर, अविनाशी, पूर्ण पुरुष के द्वारा अग्नि उत्पन्न होता है। सूर्य उस अग्नि की समिधा है। इससे यह सहजतया जाना जा सकता है कि सूर्य में दो पदार्थ हैं– एक अग्नि और दूसरा उसका समिधारुपी ईंधन।

वास्तव में यह आध्यात्मिक दृष्टि से बतलाया गया ज्योतिष (सूर्य) सम्बन्धी एक विज्ञानसूत्र है। मेरे अध्ययन के आधार पर वेदों में पाँच प्रकार की ज्योतियाँ हैं–

1. नक्षत्रिय : (नीहारिकाएँ अर्थात्) नक्षत्रों के समूह।

2. नक्षत्र : स्वतः प्रकाशयुक्त ज्योतियाँ। इन्हीं को सूर्य कहा जाता है।

3. ग्रह : सूर्य को आधार बनाकर उसके चारों ओर भ्रमण करने वाले पृथ्वी आदि लोक। इनको भूगोल आदि कहते हैं। बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि आदि इसी कोटि के लोक हैं। ये स्वत: प्रकाशयुक्त नहीं हैं, किन्तु अपने परिवार के आधारभूत सूर्य (नक्षत्र) से ये प्रकाशित होते हैं। अतः इनको ज्योतियाँ कहा जाता है।

4. उपग्रह : ग्रहों को आधार बनाकर उनके चारों ओर भ्रमण करने वाले, जैसे कि चन्द्र लोक। ये भी परतः प्रकाशित हैं।

5. धूमकेतु : पुच्छल तारे। ये परतः प्रकाशित

होते हैं।

उल्काएँ : भूमि पर गिरने वाले पदार्थ। ये रात्रि में देखे जाते हैं, दिन में नहीं। ये परतः या निमित्त विशेष से प्रकाशित दीखते हैं।

वेदों में मानव को स्वस्थ एवं सुखी बनाने के लिए जहाँ अनेक उपाय प्रस्तुत किए गए हैं वहीं भौतिक जगत् से होने वाले लाभों का वर्णन किया गया है। साथ ही उनसे लाभ लेने का मार्गदर्शन भी किया है। उदाहरण के लिए तीन मन्त्र नीचे दिए जाते हैं :

शन्नो वातः पवतां शन्नस्तपतु सूर्यः।
शन्नः कनिक्रदत् देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु।। यजु. 31/10

हे परमेश्वर ! वा विद्वानों ! जिस प्रकार जीवन व्यतीत करने से हमारे लिए वायु सुखकारी बने, सूर्य सुखकारी तपे, गर्जने वाली विद्युत सुखकारी हो, मेघ सब ओर से वर्षे वैसी विद्या हमें दीजिए।

पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिद्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषध यः शान्तिर्वनस्पतयः
शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे में देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः।
ताभिः शान्तिभिः सर्वशान्तिभिः शमयामोहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह– पापं तच्छान्तं तच्छिव सर्वमेव शमस्तु नः।। अथर्ववेद 29/9/14।

हे परमेश्वर हम इस प्रकार का जीवन व्यतीत करें जिससे पृथ्वी शान्तिदायक हो, अन्तरिक्ष शान्तिदायक हो, द्युलोक शान्तिदायक हो, जल शान्तिदायक हो, औषधियाँ शान्तिदायक हों, वनस्पतियाँ शान्तिदायक हों, सब देव मुझे शान्तिदायक हों। सबके द्वारा दी गई शान्तियों के कारण मेरी शान्ति बनी रहे। सदा शान्ति बनी रहे। उन अनविच्छिन्न शान्तियों के साथ, और सर्वात्रिक शान्तियों के साथ मैं और हम सब शान्ति को प्राप्त हों। इस भूमण्डल में जो घोरकर्म हैं, घातक कर्म हैं, इस भूमण्डल में जो क्रूर कर्म हैं, हिंस्र और दुःखदायी कर्म हैं, इस भूमण्डल में जो पापकर्म हैं वे सब शान्त हो जाएँ। वे सब सब को सुखदायी हो जाएँ। हम सबके लिए सब कुछ ही शान्तिदायक हो।

वेद मानव को सूर्योदय से पूर्व जागने का विधान करता है और उसका कारण बतलाता है कि–

उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आददे। अथर्ववेद 7/13/2।

सूर्योदय के समय सोने वाले के वर्चस को सूर्य छीन लेता है। इन मन्त्रों का अभिप्राय यह है कि सूर्यादि समस्त पदार्थों के गुणों के अनुकूल अपने जीवन को चलावें और उनसे यथेष्ट लाभ उठावें।

मैंने वेदों का जो अध्ययन किया है उसके आधार पर उसमें कहीं भी न भविष्यवाणियों का कथन है न जन्मकुण्डली, ग्रह, नक्षत्र, तिथि, वार, मुहूर्त, राशि आदि का ही। इतना ही नहीं इससे भिन्न–

'कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः' कहा है। कर्म मेरे दाहिने हाथ में और विजय मेरे बायें हाथ में रखी है। जब कर्म का फल मिलता है तो फलित का क्या अर्थ है ?

भविष्यत्वाणियों के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि जहाँ कार्य–कारण का सम्बन्ध है वहाँ ही कारण को देखकर कार्य का ज्ञान होता है। जहाँ मिट्टी, कुम्हार, दण्ड, चक्र आदि कारण होंगे कुम्हार का बुद्धिपूर्वक कार्य होगा वहाँ कार्य घड़ा होगा। कार्य–घर को देखकर अभियन्ता, शिल्पी, ईंट, पत्थर, लकड़ी आदि कारणों का ज्ञान होगा। यह ठीक है। चिकित्सक रोगी के लक्षणों के आधार पर रोगी के विषय में भविष्यवाणी कर सकता है। आचार्य शिष्य कितना विद्वान बन सकता है इस विषय में भविष्यवाणी कर सकता है। क्योंकि यहाँ कार्य–कारण का सम्बन्ध है।

जहाँ कार्य–कारण का सम्बन्ध नहीं होगा वहाँ भविष्य को न तो जाना जा सकता है न बतलाया जा सकता है। यदि कुछ बतलाया जाता है तो वह निराधार ही होता है। जन्मे बालक को देखकर उसके भविष्य के विषय में कुछ बतलाना निराधार ही है। वर–वधू की कुण्डलियों को देखकर उनके गृहस्थ जीवन के विषय में कुछ बतलाना निराधार ही है।

मैंने ज्योतिष विवेक में फलित की उत्पत्ति सहित फलित के नाम से प्रचलित मुहूर्त, वार, तिथि, करण, नक्षत्र, योग, मास, युग, राशि, नवग्रह, कुण्डली, अंकज्योतिष, शकुन, स्वप्न, अंगलक्षण, हस्तरेखा के फल की एवं भविष्यवाणियों की सप्रमाण सोदाहरण आलोचना

की है। यह वहीं देख लेवें।

पूजापाठ में, विघ्न की शान्ति में, शरीर के अनिष्ट को दूर करने में, धन–सम्पत्ति की प्राप्ति में अपेक्षित नवग्रहों की अतिसंक्षेप में आलोचना करता हूँ जिससे पता चलेगा कि सम्पूर्ण. फलित ज्योतिष का स्वरूप क्या है।

नवग्रहों से बहुत लोग परिचित होते हैं। नवग्रहों की पूजा लगभग शुभ कार्यों में होती है। नवग्रहों की मूर्तियाँ हैं, मन्दिर हैं, आभूषणों में धारण करने के पत्थर, हीरे आदि भी हैं। अस्तु। प्रथम प्रश्न यही है कि नवग्रह कौन से हैं ? यदि कोई कहे कि सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु तो प्रश्न है कि सूर्यचन्द्र ग्रह नहीं है। सूर्य नक्षत्र है। चन्द्र उपग्रह है। रहे सात ग्रह। राहु–केतु ग्रह नहीं हैं, वे तो भिन्न–भिन्न दूरी पर रहने वाले दो वृत्तों के दो स्पर्श बिन्दु हैं। एक बिन्दु का नाम राहु है और दूसरे का नाम केतु है। न ये ग्रह हैं न ग्रह के अवयव, न नक्षत्र, न उपग्रह। अब केवल पाँच ग्रह रहते हैं। फलित को मानने वाले यह विचार तक नहीं करते कि पृथ्वी भी ग्रह है। वास्तव में मानव का पृथ्वी के साथ जितना सम्बन्ध है उतना और किसी ग्रह के साथ नहीं। इसका उसके शरीर पर व मन पर जितना प्रभाव पड़ता है व पड़ सकता है उतना किसी भी ग्रह का नहीं। फलित वालों ने नवग्रहों में इसको क्यों नहीं गिना ? क्या कोई यह सिद्ध करेगा कि प्रभव नामक संवत्सर, माघ शुद्ध सप्तमी विशाखा नक्षत्र में कश्यप गोत्र और कलिंग देश में सूर्य का जन्म हुआ ? इसी प्रकार अन्य आठों की बातें हैं। क्या यही फलितज्योतिष है ?

तथाकथित फलित (अर्थात् कल्पित) ज्योतिष सत्य सिद्ध नहीं हुआ, न सत्य सिद्ध होगा। फलित को मिथ्या कहने मानने वालों को तथाकथित बुद्धिवादी, भारतीय ज्ञान–विज्ञान से रहित, ज्योतिष शास्त्र से अनभिज्ञ नहीं कह सकते। क्योंकि वे यथार्थवादी भारतीय ज्ञान–विज्ञान को तलस्पर्शी ज्ञान रखने वाले, गुरुमुखतः शास्त्र का आद्योपान्त अध्ययन करने वाले मेधावी हैं। ये दुराग्रही नहीं हैं। सदाग्रही हैं अतः फलित का खण्डन करते हैं। जो नीर–क्षीर विवेचन समर्थ सत्य–जिज्ञासु फलित की असत्यता को सप्रमाण सयौक्तिक जानना चाहें वे मेरी लिखी 'ज्योतिष विवेक' पुस्तक पढ़ें।

आर्ष गुरुकुल वड्लूरु
कामारेड्डी
इन्दूरु आन्ध्रप्रदेश–50322

पृष्ठ 32 का शेष .....

करते थे। उनके मित्रों का कहना था कि 40 वर्षों की उनकी जानकारी में बॉयल ने अपने इस नियम का कभी भी उल्लंघन नहीं किया। उन्होंने धर्म पर अनेक व्याख्यान लिखे। वे बाइबिल के अच्छे ज्ञाता थे तथा बाइबिल के उद्धरणों का अंग्रेजी एवं यूनानी भाषाओं में समान स्पष्टता के साथ उल्लेख करते थे। वे धर्म के प्रचार प्रसार में काफी रुचि लेते थे। 1661 से 1677 (16 वर्षो तक) वे सुप्रसिद्ध ईस्ट इंडिया कंपनी के निदेशक रहे। वे गरीबों एवं साधनहीनों की सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति को बढ़ावा देने के पक्षधर थे– पर धर्म के नाम पर शोषण के पक्षधर नहीं थे। उन्होंने बाइबिल का अनेक भाषाओं, विशेषतः अमेरिकी इंडो तथा मलयाली में अनुवाद करवाया और जनजातियों में इनका मुफ्त वितरण कराया था।

बॉयल ने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन किया। इसका मुख्य कारण तो धार्मिक ही था, पर कहा जाता है कि अत्यंत सुकोमल एवं नाजुक मिजाज थे और अपने स्वास्थ्य के कारण ही उन्होंने विवाह नहीं किया था। अपने जीवन के अंतिम 23 वर्षों के दौरान लंदन में वे अपनी बड़ी बहन कैथरीन के घर पर रहे। धनधान्य से सर्वथा संपन्न होते हुए भी वे अत्यंत सरल जीवन व्यतीत करते थे। लंदन में ही 64 वर्षों की आयु में 1691 में उन्होंने इस संसार से विदा ली और तब तक आधुनिक वैज्ञानिक की गति तेज हो चुकी थी। सर आइज़क नयूटन की प्रसिद्ध कृति' प्रिन्सीपिया' लगभग 4 वर्ष पूर्व (1687) में प्रकाशित हो चुकी थी।

बी, 2/228, भदैनी
वाराणसी

विज्ञान वार्ता

जीवनदाता रंग

कुछ विद्वानों का ख्याल है कि मनुष्य का ध्यान खेती के साथ हरियाली और जीवन से उसके सम्बन्ध की ओर आकर्षित हुआ। बढ़ते हुए तरुण जीवन को खेती की हरियाली के रूप में उन्होंने देखा। इससे हरे लेप तथा हरे चूर्ण उसके लिए जीवन के प्रतिनिधि बन गए जो सौन्दर्य को बढ़ाने वाले द्रव्य के तौर पर भी इस्तेमाल किये जाने लगे। इसके लिए तूतिया दूसरे मसाले और तेल के साथ पीसकर रंग तैयार किया जाने लगा। मिस्र की प्राचीनतम मोमियाई (मृतशव) इसी रंग से रंगी मिलती है। शताब्दियों तक इस्तेमाल करते हुए मिस्रियों को यह जानने में दिक्कत नहीं हुई कि तूतिया को गरम करने पर एक चमकीला भूरा रंग तैयार हो जाता है। इसी प्रक्रिया से मिस्रियों को संयोगवश ही ताँबे का पता लग गया। शवों को हरे रंग से रंगना उन्हें अमर जीवन देने के लिए एक धार्मिक कृत्य था। ताँबे का आविष्कार उसी क्रिया का फल था इसीलिए मनुष्य ने उसे साधारण आविष्कार के तौर पर नहीं लिया। ताँबे को गरम करके पीटने पर तेज धार निकल आती है, यह तूतिया को गरम कर कूटने वाले के लिए जानना मुश्किल न था। लाल, हरे के अतिरिक्त पीले रंग को भी जीवनदाता रंग माना जाने लगा क्योंकि सबेरे के सूर्य का रंग सुनहला था। स्थायी वास स्वीकार करने के पहले ही मनुष्य चन्द्रमा को अपने शिकार तथा दुश्मन से निर्भयता प्रदान करने में सहायक देवता के तौर पर ही नहीं मानने लगा बल्कि उसने यह भी देखा कि स्त्रियों का मासिक धर्म चन्द्रमा के मास के हिसाब से होता है। इस तरह वह नवजीवन के उत्पादन में सहायक होता है।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन
'समाज' पुस्तक (1987) से साभार

नमक का घर

पोलैण्ड में क्रेको नाम का एक प्रसिद्ध नगर है। उसके पास ही नमक का एक लम्बा चौड़ा क्षेत्र है। वहाँ नमक इतना शुद्ध और साफ होता है कि उससे चट्टानें दूर से संगमरमर की चट्टानों जैसी सफेद और चमकदार दिखाई देती हैं। धरती में ऊपर से लेकर नीचे बहुत गहराई तक ऐसी चट्टानों की तहों पर तहें जमी होती हैं। यह नमक केवल देखने में ही सुन्दर नहीं वरन् किस्म में भी दुनिया में सर्वश्रेष्ठ है। इसलिए यहाँ प्रतिवर्ष 60,000 टन नमक निकालकर विदेश भेजा जाता है।

ऐसा चमकदार अनोखा नमक देखकर वैज्ञानिकों का मन ललचाया। उन्होंने सोचा क्यों न नमक के मकान बनाकर उसमें आनंदपूर्वक रहा जाए। लोग यह सोचते थे कि शायद पानी के साथ नमक गल जाता है जिससे मकान नहीं बनाया जा सकता परन्तु पोलैण्ड के इस अनोखे नमक ने वैज्ञानिक को नमक नगर बनाने को मजबूर किया। नमक की बड़ी–बड़ी चट्टानों को काटकर उसकी दीवारें बनाई गईं। उस पर नमक का फाउंडेशन किया गया। कमरा, फर्श, सारी भवन सामग्री में नमक का पूरा इस्तेमाल किया गया। वहाँ ऐसा एक ही मकान नहीं बल्कि पूरा एक नगर ही बना दिया गया है। ईंट–चूने का तनिक भी इस्तेमाल नहीं किया गया। पौलैण्ड की यह नगरी 'वाएविक्जा' नाम से अभी भी प्रसिद्ध है। इसमें घर से लेकर, सड़कें, होटल, अस्पताल, गिरजाघर, सिनेमाघर, क्लब एवं बाग बगीचे में भी नमक का पूरा इस्तेमाल किया गया है। ऐसी अद्भुत बस्ती को देखकर लोगों में शायद संगमरमर का भ्रम पैदा हो जाता है। भवन वैज्ञानिकों का वास्तव में यह अद्भुत करिश्मा है।

संजय गोस्वामी
डब्ल्यू.आई.जी., बी,ए.आर.सी., मुंबई

माँ के कुपोषण का परिणाम

वैज्ञानिकों ने मानव मस्तिष्क के विकास को तीन अवस्थाओं में बाँटा है। पहली अवस्था वह है जिसमें मस्तिष्क की कोशिकाओं का तेजी के साथ निर्माण होता है। यह अवस्था गर्भावस्था के चौथे माह से प्रारम्भ होकर बच्चे के जन्म के समय तक, माँ के गर्भ में ही पूरी हो जाती है। अब यदि माँ ही कुपोषित होगी तो बच्चा कैसे स्वस्थ होगा ?

बच्चों के कुपोषित होने का सबसे प्रमुख कारण है माँ का कुपोषित होना और गर्भावस्था के दौरान उसे अतिरिक्त पोषक आहार न मिल पाना। साथ ही अधिक बच्चों का जन्म, दो बच्चों के जन्म के बीच में कम समयांतर तथा कम आयु में माँ बनना आदि भी बच्चों के कुपोषण के कारण हैं। दूसरी अवस्था वह है– जो शिशु के जन्म के समय से लेकर 18 माह तक चलती है। इस अवस्था में कोशिकाओं का बनना धीरे धीरे कम होने लगता है और उनके आकार में वृद्धि प्रारम्भ होती है। मस्तिष्क के विकास की तीसरी अवस्था वह है। 18 महीने पहुँचते पहुँचते नई कोशिकाओं का निर्माण पूरी तरह रुक जाता है तथा उनकी वृद्धि की रफ्तार तीन वर्ष की अवस्था तक चलती रहती है। इस बीच कोशिकाओं के आकार में वृद्धि के साथ तंत्रिका सूत्रों का निर्माण होता है और उनकी शाखाएँ बनती हैं। इस तरह पूरे मस्तिष्क में तंत्रिकाओं का जाल सा बन जाता है।

कोशिकाओं के तेजी से निर्माण के समय शरीर को कम पोषक तत्व मिलने पर कम संख्या में कोशिकाओं का निर्माण होता है। जन्म के बाद कुपोषण का शिकार होने पर कोशिकाओं की वृद्धि प्रभावित होती है। अन्ततः कोशिकाओं की कम संख्या उनका छोटा आकार तथा कोशिका तंतुओं और उनकी शाखाओं, उपशाखाओं में कमी सब मिलकर प्रभावित शिशु को अल्पवृद्धि वाला बना देते हैं।

शिशु का स्वास्थ्य पूरी तरह उसे जन्म देने वाली माँ के स्वास्थ्य एवं पोषण पर निर्भर करता है। इसे जानने के लिए कुछ बातें जानना आवश्यक है। गर्भावस्था प्रारम्भ होते ही माँ के गर्भाशय में बदलाव होने लगते हैं। सबसे पहले उसका आकार बढ़ने लगता है ताकि विकसित हो रहे शिशु को विकास के लिए पर्याप्त स्थान मिल सके। साथ ही गर्भाशय में रक्त की आपूर्ति भी बढ़ जाती है, क्योंकि गर्भ में पल रहे शिशु को पोषक तत्व पहुँचाने तथा वहाँ व्यर्थ पदार्थ हटाने का वही एक माध्यम होता है। गर्भाशय के अतिरिक्त रक्त की आपूर्ति में कोई कटौती न हो, इसके लिए यह जरूरी हो जाता है कि शरीर में अतिरिक्त रक्त का निर्माण हो। माँ के शरीर में होने वाले ये सारे परिवर्तन बिना अतिरिक्त पोषक आहार के सम्भव हैं ही नहीं। यही कारण है कि यदि माँ को उचित मात्रा में पोषक तत्व न मिलें तो उसका शरीर कुपोषण का शिकार होगा ही, साथ ही शिशु का विकास भी प्रभावित होता है। ज्यों ज्यों गर्भावस्था बढ़ती जाती है त्यों त्यों माँ के शरीर में कुछ और परिवर्तन होते हैं, चूँकि जन्म के बाद तक बच्चे को आहार प्रदान करने के साधन केवल माँ के स्तन ही होते हैं इसलिए गर्भावस्था के दौरान ही उनमें वृद्धि होने लगती है और उनमें दूध तैयार करने की क्षमता विकसित होती है।

इसके साथ ही माँ के शरीर के अन्दर अतिरिक्त चर्बी (वसा) भी जमा होती है, जिससे माँ को दूध उत्पन्न करने के लिए आवश्यक ऊर्जा भी मिलती है। यदि माँ को अतिरिक्त पोषक तत्व न मिलें, तब भी ये परिवर्तन होंगे ही। एक गर्भवती महिला को कम से कम इस तरह का आहार अवश्य मिलना चाहिए ताकि बच्चे के जन्म के समय तक उसके वजन में 11.5 किलोग्राम की वृद्धि हो जाए। इसमें बढ़े हुए रक्त का भार 500 ग्राम तथा माँ के शरीर में जमा हुई चर्बी का भार 4.5 से 5.5 किलोग्राम तक होता है। इस तरह गर्भवती महिला से जन्म लेने वाले शिशु का भार लगभग 3.5 किलोग्राम होता है। इस तरह की गर्भवती महिला से जन्म लेने वाले बच्चे का शारीरिक भार आवश्यकता से कम हो तो स्वस्थ शिशु को जन्म देने के लिए गर्भावस्था के दौरान उसके भार में 11.5 किलोग्राम से अधिक की वृद्धि आवश्यक हो जाती है।

यदि प्रारम्भ में कुपोषित बच्चों को बाद में पर्याप्त पौष्टिक आहार दिया जाए तथा उचित देखभाल की जाए तो कुपोषण के प्रभाव को काफी घटाया जा सकता है। कुपोषण की समस्या जितनी गंभीर है इससे छुटकारा पाना उतना ही आसान है।

चिकित्सा अनुसंधान परिषद् ने गर्भवती महिलाओं के लिए प्रतिदिन 2500 कैलोरी ऊर्जा तथा 55 ग्राम प्रोटीन देने वाला आहार बताया है। लेकिन आँकड़े बताते हैं कि हमारे देश में एक औसत गर्भवती महिला को दिन भर में भोजन से केवल 1420 कैलोरी ऊर्जा तथा 37 ग्राम प्रोटीन ही मिल पाता है। इस प्रकार एक वर्ष से पाँच वर्ष के बच्चों को औसतन 1300 कैलोरी ऊर्जा और 19 ग्राम से कम प्रोटीन मिल पाता है, जबकि जरूरत होती है 1420 कैलोरी ऊर्जा और 1903 ग्राम प्रोटीन की। चिकित्साविशेषज्ञों का अनुमान है कि हमारे देश में प्रतिवर्ष जितने बच्चों का जन्म होता है, उनमें से केवल 13 प्रतिशत तक का ही स्वस्थ विकास होता है। बाकी लगभग 17 प्रतिशत की बड़े होने से पहले ही मृत्यु हो जाती है और अन्य शारीरिक एवं मानसिक रूप से कमजोर रह जाते हैं।

हमारे देश में 40 प्रतिशत बच्चे कुपोषण से ग्रस्त हैं और 53 फीसदी चार वर्ष से कम आयु के बालक प्रोटीन की कमी से प्रभावित हैं। बड़े देशों में बंगलादेश के बाद भारत दूसरे स्थान पर है जहाँ कुपोषण बच्चों के लिए समस्या बना हुआ है तथा महिलाओं, खासकर गर्भवती महिलाओं के लिए भी जिनमें 87 फीसदी खून की कमी से पीड़ित हैं।

विश्व बैंक की हाल की रिपोर्ट के अनुसार केरल में 4 साल से कम उम्र के 29 प्रतिशत बच्चे सामान्य, 41 गंभीर रूप से कम वजन के हैं जबकि बिहार और उत्तर प्रदेश में यह संख्या क्रमशः 63 और 59 फीसदी है।

यद्यपि भारत में शिशु मृत्यु दर को 1951 की प्रति एक हजार में 146 से कम कर 1996 में 72 पर ले आया गया है, लेकिन जीवित बचने वाले अधिकतर बच्चों में कुपोषण बरकरार रहा। रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में एक लाख में से 420 की माता मृत्यु दर अस्वीकार्य रूप से अधिक है तथा पूरी दुनिया में माताओं की करीब एक चौथाई मौतें इसी देश में होती हैं। विश्व बैंक का कहना है कि कुपोषण न केवल व्यक्तियों और परिवारों के जीवन को ग्रसता है बल्कि शिक्षा पर निवेश से होने वाले लाभों को भी धूमिल करता है तथा सामाजिक एवं आर्थिक विकास में बड़ी बाधा बनता है।

कुपोषण एवं शिशु मृत्यु दर

यदि किसी बच्चे के वजन में कमी रहती है तो भी मृत्यु की आशंका रहती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 1995 में विकासशील देशों में लगभग आ ो शिशुओं की मृत्यु का कारण कुपोषण है।

कुपोषण	55 प्रतिशत समस्त क
श्वास संबंधी	19 प्रतिशत
डायरिया	19 प्रतिशत
जन्म से पूर्व या बाद	18 प्रतिशत
चेचक	7 प्रतिशत
मलेरिया	5 प्रतिशत
अन्य	32 प्रतिशत

श्रीमती उमा वर्मा तथा श्री सुरेश कुमार वम
गणित विभा
के.आर.मोदी मेमोरियल वनांचल कालेज
गिरिडीह (झारखंड) 81530

वर्ष 2002 के लिए डॉ0 गोरख प्रसाद विज्ञान लेखन पुरस्कार घोषित

1. श्री राम चन्द्र मिश्र, मुम्बई 2. डॉ0 जे.एल. अग्रवाल, कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश 3. ज्योति भाई, इलाहाबाद

– सम्पादक

बच्चों के लिए विशेष

परिवार का लाडला : नेवला

रामेश बेदी

रात को बैठक में मेहमान के साथ मैं चाय पी रहा था। दिनभर शूटिंग करने के बाद नरेश और राजेश आ गए। राजेश ने मेरे सामने एक थैला रखा जिसका मुख रस्सी से बँधा था। जमीन पर पड़ा हुआ थैला खुद–ब–खुद हिलने लगा। नरेश बोला, "पापा जी, राजेश एक खिलौना सुभाष के लिए लाया है।" मेरे छोटे बेटे सुभाष को चलते फिरते खिलौनों से खेलने का चाव था।

थैला खोला तो उसके अंदर नेवला बैठा था। बाहर निकालने के बाद कुछ ही मिनटों में उसने मेरे हाथों को दोस्ती के हाथ समझाना शुरू कर दिया। पाँच मिनट के भीतर ही अपने को घर के नए वातावरण के अनुकूल बना लिया। उसके गले में मामूली–सी रस्सी बँधी थी। उसमें ढील दे दी और उसे अपनी इच्छा से जाने देने लगे।

छोटी मेज पर काजू, नमकीन और मीठे बिस्कुट रखे थे; प्यालों में से दूध और चीनी मिली हुई गरम चाय से वाष्प उठ रहे थे। इन खाद्य पदार्थों की सुगंधें जरूर लुभावनी थीं, लेकिन नेवले ने इधर कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। नए घर में वह संकोच या भय महसूस कर रहा हो, ऐसी बात भी नहीं थी, क्योंकि वह अपनी गरदन को ऊँचा उठाकर इधर–उधर उड़ने वाली गंधों को पकड़कर सोफे पर कुछ कदम बढ़ता जा रहा था। सोफे को सूँघता जाता था। ऐसा लगता था कि वहाँ कुछ देर पहले कोई छोटा जीव चलकर गया है। उसके पैरों की सूक्ष्म गंध वहाँ लग गई है जिसे हम तो लेशमात्र भी अनुभव नहीं कर पा रहे, परंतु नेवले के नाक की अतिशय संवेदनशील चेतावाहिनियों से उसकी तरंगें टकरा रही हैं। वह बेचैनी से उस जीव को तलाश करने चला। वह उसका भोजन भी हो सकता था और दुश्मन भी।

नेवला अब तक एक सपेरे के पास रहता था। उसे वह हर रोज साँप से लड़ाया करता था। इससे दर्शकों का मनोरंजन होता था और सपेरे को कुछ पैसे मिल जाते थे। यह मादा नेवला थी। सँपेरे ने इसका नाम रानी रखा था। उसने बहुत छोटी उम्र में इसे पाल लिया था। रानी उससे इतना हिल गई थी कि रात को उसके साथ ही बिस्तर में सोती थी। पार्क में हर रोज अपने चारों ओर बड़े घेर में खड़े दर्शकों को देखती थी। सड़क पर धुआँ छोड़ती हुई बसों की घर्र्..... घर्र्..... तथा फोर व्हीलरों की कान फाड़ने वाली फट्–फट् की आवाजें सुनती थी। वह एक कुशल अभिनेत्री के समान अविचल भाव से अपना गंभीर और जोखिपूर्ण कार्य संपादित करती थी। बख्शीश में इसे मालिक की शाबाशी मिलती थी।

हमारे घर में आते ही रानी ने अपने करतब दिखाने शुरू कर दिए। सोफ़े को सूँघती हुई स्टील की अलमारी के पीछे खिड़की पर चढ़ गयी। वहाँ फोटो पेपर का एक रोल पड़ा था। उसके पीछे उसे शिकार मिल गया। चुहिया ने वहाँ बच्चे दे रखे थे। वह उन्हें खा

गई। उसके बाद सोफे पर बैठकर हाथौं को चाटकर साफ करने लगी।

हमारे सोने वाले कमरें में जाकर भी वह स्थिर नहीं बैठी। उसका हमारे घर में पहला दिन था। हमें डर था कि खुला छोड़ने से वह कहीं भाग न जाए। खिड़कियाँ और दरवाजे बन्द करके उसे खुला छोड़ दिया। दरवाजे की चौखट और दीवार के बीच की दरार में वह कुछ सूँघने लगी। फिर उसने अपनी अंगुली को दरार के अंदर डाला। वहाँ बैठी हुई एक टिड्डी कूदकर बाहर आ गई। रानी ने पकड़ लिया और खा गयी।

प्लेटों में परोसे हुए अंडों के आमलेट की सुगंध आ रही थी। हम लोग खाना खाने बैठे थे। रानी को पास ही बाँध दिया था। वह बार–बार आमलेट लेने के लिए अधीरता दिखाती थी। आमलेट को शौक से खा गई।

रानी रात को नरेश की रजाई के अंदर सोई। उसने तो नरेश को परेशान नहीं किया, लेकिन नरेश खुद परेशान होता रहा। नींद में भी रानी का ध्यान बना रहा कि करवट बदलते समय कहीं नीचे न दब जाए।

इक्कीस नवम्बर को फुटबाल का एक फाइनल मैच खेला जाना था। दोनों युवा कैमरामैन उसकी शूटिंग के लिए गए थे। रानी राजेश की जेब में घुसी हुई थी। मैच देखने बैठे तो रानी ने जेब से बाहर गरदन निकाली। स्टेडियम में बैठे दर्शकों को और खेल को देखती रही। पहले दिन सुबह उसे सेहन के बगीचे में ले गए। वहाँ पंजों से नरम मिट्टी को जगह–जगह खोदने लगी।

इक्कीस नवम्बर की रात को मेरी रजाई में घुस गई। अलग चारपाई पर उसका बिस्तर लगाया गया था। कल रात नरेश को परेशानी उठानी पड़ी थी, इसलिए उसे अलग सुलाना चाहते थे। एक चारपाई पर उसका बिस्तर लगा दिया गया। रजाई के अंदर उसे बिठा दिया। वह खिसककर बाहर आ गई और मेरी रजाई के अंदर घुस गई। उसे कई बार अलग सुलाने की कोशिश की, परंतु वह मेरे साथ ही सोयी। अधिक समय मेरी देह के साथ सटकर सोती रही। कभी पीठ के साथ और कभी टाँगों के बीच में, एक बार पाजामे की मोरी के अंदर घुस गई।

अगली रात उसने मेरे बिस्तर में पेशाब कर दिया। इसलिए अब उसे अपने साथ सुलाना संभव नहीं था। उसे गत्ते के एक डिब्बे में बिठाया और स्टोर में रख दिया। उसमें से दो–तीन बार बाहर निकली, फिर उसी के अंदर सो गई। नए घर में उसने आसानी से सोना सीख लिया। दिन में भी खाने और खेलने के बाद जब सोना

नेवला परिचय

नेवला सारे भारत में हिमालय की पादगिरियों (foothills) से कन्याकुमारी तक पाया जाता है। पश्चिम की ओर पर्शिया और मेसोपोटामिया तक और दक्षिण की ओर श्रीलंका तक मिलता है।

इसकी कुल लम्बाई नब्बे सेंटीमीटर तक होती है जिसमें पैंतालीस सेंटीमीटर पूँछ होती है। औसत भार लगभग 1. 4 किलोग्राम होता है। मादा से नर भारी और बड़े होते हैं।

ये सारे साल सन्तानोत्पादन करते हैं। एक साल में तीन ब्यात हो सकते हैं। गर्भाधान काल लगभग साठ दिन का होता है। ये दिलचस्प और उपयोगी पालतू जानवर बन जाते हैं।

वे दिन या रात, किसी भी समय, अपने आहार का शिकार कर लेते हैं। वे अकेले या नर–मादा मिलकर शिकार करते हैं। कभी–कभी माँ और उसके पीछे बच्चे जाते हुए दिखाई देते हैं। ये चूहे, चूहिया, साँप, छिपकलियाँ, मेंढक, बिच्छू, कनखजूरे, कीड़ों का शिकार करते हैं। पक्षियों के अण्डों को खा जाते हैं।

इसे अंग्रेजी में कौमन मौंगूज (common mongoose), कन्नड़, तमिल एवं मलयालम में कीरी; गुजराती में नुरुलिआ, तेलुगू में येन्तवा मंगिसा; मराठी में मुंगुस; लेटिन में हर्पेस्तेस एद्वर्दसी, (ज्योफ्रोय) (Herpestes edwardsi (Geoffroy)) कहते हैं।

होता था वह डिब्बे के अन्दर घुस जाती थी। डिब्बे में रुई रख दी थी। डिब्बा चालीस सेंटीमीटर लंबा, इतना ही ऊँचा और इतना ही गहरा था।

जमीन पर फैली हुई कद्दू की बेलों से बगीचा भरा पड़ा था। उसके अंदर रानी खूब खेलती थी। सुबह की सुहानी धूप में दीवार की दरारों या छिद्रों को सूंघती फिरती और अंगुलियों से उनके अंदर से टिड्डियाँ निकालकर खा जाती थी। बगीचे के किनारे घीस [bandicoot rat; Bandicota indica (Bechstein)] का एक बिल था जिसे घीस ने एक साल पहले खोदा था। सीमेंट के फर्श के नीचे यह कहाँ तक चला गया है और इसका कोई अंदाजा नहीं था। उसे बंद करने के लिए हर रोज कुछ रोड़े–ईट अंदर डालते थे। रात को फिर मुँह खोल लिय जाता था। यह बिल कितने ही क्विंटल रोड़े–पत्थर खा चुका था।

रात को घीस बगीचे में चक्कर लगाती हुई रसोई के पास भी जाती थी और फेंकी गई जूठन को खाकर बिल में घुस जाती थी। घीस के पैरों वाली जमीन को सूँघती हुई रानी बिल तक पहुँच गई और उसके अंदर उतर गई। नेवला चूहे का दुश्मन होता है, परंतु हमारी नेवली तो अभी इतना छोटी थी कि घीस में से ऐसे तीन नेवले निकल आएँ। घीस के पुष्ट बदन को मैंने देख रखा था और यह भी जानता था कि वह अकेली नहीं है, उसके कुनबे में बरसात में हमने चार जने देखे थे। अंदेशा था कि लड़ाई ठन जाने पर इतना बड़ा कुनबा रानी को मार डालेगा।

एक उपेक्षित कोने की खिड़की को बंद करते समय कभी छिपकली किवाड़ों के बीच में फँसकर मर गई थी। उसकी गंध पाकर रानी ऊपर चढ़ गई और सूखी हुई छिपकली को खा गई।

सुबह की धूप में रानी बगीचे के अंदर खूब खेलती थी। राजेश पकड़ने दौड़ता तो छकाकर कभी इधर भाग जाती, कभी उधर। मस्ती में आ जाने पर खुद ही कुलांचें मारने लगती। अपने शरीर को गोल घेरे में मोड़कर झब्बेदार पूँछ से ही खेलने लगती। पूँछ को कभी दाँतों से पकड़ती और कभी पंजों से।

रानी को सपेरा क्या खिलाता रहा है, यह पूछना राजेश भूल गया था। हमें नए सिरे से अनेक प्रकार के भोजनों को खिलाने का तजुर्बा करना पड़ा था। उसे सबसे अधिक प्रिय आमलेट था, उसके बाद कच्चा या उबला अंडा, फिर गोश्त। पकी हुई सब्जी या किसी भी नमकीन चीज को नहीं खाती थी। उसे फीका दूध देते थे। नीचे गिरी हुई चाय या काफी को स्वाद से पीती थी। संतरा, पपीता, आदि रसीले फलों को खाती थी; सेब को नहीं। सेब को जरा गोदकर लुचलुचा कर देते थे तो खा जाती थी। मूंगफली जैसी कठोर चीज नहीं खाती थी।

एक दिन फ्रिज में रखा हुआ ठंडा दूध उसे पिलाया। वह अनुकूल नहीं पड़ा। उसका पेट बिगड़ गया। रोटी और डबल रोटी नहीं खाती थी। एक दिन घर में अंडा नहीं था और वह खाना माँग रही थी। डबल रोटी को दूध में कुछ देर भिगो कर उसकी कटोरी में परोसा तो खा गई। गोश्त को देखकर तो पागल हो जाती थी। टाँगों के बल सीधे खड़ी हो जाती थी, लंबा शरीर धरती के साथ समकोण बना रहा होता था, जुड़े हुए हाथ छाती के सामने रहते थे, लंबोतरा मुँह ऊपर की ओर राजेश के हाथ में पकड़े हुए गोश्त की तरफ उठा रहता था। इसी पोज में राजेश के सामने चलती हुई ऐसी लगती थी मानो कोई गुड़िया नाच रही हो। आत्मरक्षा में जिस तरह सेह अपने काँटों को खड़ा कर लेती है, उसी तरह इस वक्त रानी शरीर को फुला लेती थी और बाल खड़े कर लेती थी। पूँछ के बाल विशेष रूप से फैल जाते थे जिससे पूँछ खूब चपटी बन जाती थी और, सबसे अधिक आकर्षक हो जाती थी। इन बालों में सफेद और काले–सलेटी रंग के पट्ट पड़े होते हैं जैसे कि कस्तूरीमृग के बालों में और सेही के काँटों में होते हैं।

इसकी बुद्धि का परिचय एक छोटी सी घटना से पता चलता है। पच्चीस नवंबर की रात को राजेश कॉफी पी रहा था। हमें चाय–कॉफी पीते देखकर रानी अक्सर माँगने आ जाया करती थी। गिलास के बाहर मुँह लगा लेती थी, जिसका स्पर्श गरम लगता था। उसे यह जानकारी हो गयी थी कि शीशे के गिलासों में हम लोग जो चीज पीते हैं वह गरम हुआ करती थी। राजेश ने अपने गिलास में थोड़ी कॉफी प्याले में डालकर उसके आगे रख दी। वह उसके पास गई, दायाँ हाथ उसके अंदर डाला, गरम महसूस हुई, छोड़कर चली गई। कमरे में एक चक्कर लगाकर फिर आयी और हाथ से छूकर देखा कॉफी अब भी गरम थी। तीसरी दफ़ा छूकर फिर तसल्ली कर ली और तब पीने लगी।

हमारे घर में आने के तीन दिन बाद ही उसके गले की रस्सी खोल दी थी। थोड़ा डर भी था कि कहीं भाग न जाए अथवा कहीं गली के कुत्तों का शिकार न बन जाए।

भाग जाने से रोकने का सीधा उपाय था कि बाँधकर रखा जाए। सपेरा भी उसे इसी तरह रखता था। बंधन को रानी पसंद नहीं करती थी। स्वभाव से ही यह चंचल जीव है। रस्सी में बँधा होने पर हर वक्त बेचैनी से चक्कर लगाना शुरू कर देती थी। रानी को घर में आजादी से घूमते–फिरते देखने में ही मजा आता था वह बंधन में बेचैन देखकर कहाँ आ सकता था। स्टोर, ड्राइंग रूम, शयनकक्ष, रसोई, सहायक का कमरा, बगीचा– सब जगह वह बेखटके पहुँच जाती थी। ड्रेसिंग टेबल पर फाँदेते हुए एक बार उसकी लंबी पूँछ से टकराकर वेसलीन की शीशी नीचे गिरकर टूट गई थी। एक दिन उससे फाउंटेन पेन इंक की शीशी गिर गई थी। इन मामूली नुकसानों के अलावा उसने कुछ उत्पात नहीं मचाया था। रसोई में भी शिष्टता से आती–जाती थी। घर का कोई भी सदस्य उठा ले उसने कभी किसी को नहीं काटा। उसके पंजे तेज नाखूनों से लैस थे लेकिन उन्होंने कभी खरोंच तक नहीं मारी।

वह अजनबियों से डरती थी। उन्हें देखकर निकलकर भाग जाती थी और स्टील की अलमारी के पीछे लुक जाती थी। कुछ देर बाद झाँक–झाँककर सबको देख लेती थी।

पिछले मकान पर दाढ़ी–मूँछ वाला एक आदमी अपनी छत पर रखे गमलों में पानी डालने आता था तो उसे देखकर भाग खड़ी होती थी। कौओं और चीलों को देखकर भी चौंक जाती थी। पत्तों के ऊपर बैठे बारीक कीड़ों को खाने के लिए फूलचुही (Indian yellow-backed sunbrid : Aethopyga siparaja (Raffles)) का जोड़ा सुबह ही बगीचे में आ जाता था। पचपन ग्राम वजन के ये खूबसूरत पंछी उसके हाथ पड़ जाएँ तो उसे छोड़ने वाली नहीं थी। सुबह के अंधेरे–उजाले में तेलन (Indian robin : Saxicoloides fulicata (Linnaeus)) का एक जोड़ा भी बगीचे में सुंडियाँ और पत्ते खाने आ जाता था। तेलन फुदककर हर पत्ते पर से कीड़ों को पकड़ती जाती थी। चपटी पूँछ को ऊपर नीचे हिलाती

हुई क्यारियों में दौड़ती फिरती थी। ये परिंदे रानी के भोजन थे, लेकिन हमने उन्हें रानी के मुख से कोई पैंतालीस सेण्टीमीटर की दूरी पर कई बार बैठे देखा था। उसने कभी इन पर हमला करने की कोशिश नहीं की। भले ही दिखता हो कि एक ही छलांग में रानी उन्हें दबोच सकती है, परंतु शायद यह जानती थी कि कुदरत ने उन्हें भी इतनी अकल और फुर्ती दी है कि वे तुरंत उड़कर ऊँची शाख पर बैठ जाएँगे।

मैं रानी को पेट बनाना चाहता था। इसीलिए उसके गले में रस्सी नहीं डाली थी। राजेश ने उसके लिए पट्टा और जंजीर मँगा लिये थे, एक दिन पट्टा पहनाया भी था, लेकिन उसकी बेचैनी को देखकर खोल दिया था।

सात सितंबर की सुबह साढ़े आठ बजे रानी कच्चा अंडा और दूध पीकर घर से चली गयी थी। रात भर बाहर रही। आठ दिसंबर का दिन और रात भी उसने बाहर कहीं काटी। उसका कोई समाचार नहीं मिला। सबसे आसान कल्पना यही हो सकती थी कि उसे किसी कुत्ते ने या बिल्ली ने फाड़ दिया है। यदि ऐसा आस पास हुआ होता तो गली–मुहल्ले वाले खबर कर देते। सब लोग जानते थे कि नेवला हमारा पालतू है। कुत्तों के हाथ में पालतू नेवला ही आ सकता है, जंगली नहीं। दूसरी कल्पना यह हो सकती थी कि वह जंगली बन गई है। किसी खाली पड़े जमीन के टुकड़े में या किसी बगीचे के कोने में कहीं बिल में अपना निवास बना लिया है। यदि ऐसा हो और वह भली–चंगी हो तो उसे इन दो दिन और दो रातों के लंबे समय में हमारे घर की बिल्कुल याद नहीं आयी !

नौ दिसंबर को ग्यारह बजे दो बच्चों ने खबर दी कि गली में हमारी ही लाइन में आखिरी कोठी के सेहन में अपने में ही लिपटा नेवला निश्चल पड़ा है।

शरीर अकड़ रहा है। गरदन को उठाते तो गिर पड़ती थी। उसमें जान अभी बची थी। बुलाने पर आँख खोलने की कोशिश करती थी। एक आँख बंद थी। गीद से चिपक गई थी। मुँह पर मिट्टी लगी थी। वह साफ–सुथरी रहा करती थी, अब मैली थी। उसने बाल खड़े कर रखे थे, जैसे कि विपत्ति के समय किया करती थी। पेट खाली लगता था, शायद दो दिन से कुछ खाया–पिया नहीं था। हालत गंभीर थी। मेरा ख्याल था कि वह ठंड खा गयी है, उसके फेफड़े आक्रांत हो गए हैं; संभवतः डबल निमोनिया है। पशु–चिकित्सक ने थर्मामीटर लगाया। पारा 102 डिग्री फारेनहाइट तक चढ़ गया। डाक्टर ने पिछली रान में इंजेक्शन के जरिए एक दवा डाल दी। सुई चुभने का प्रतिरोध करने की ताकत उसमें नहीं बची थी। डाक्टर ने एक दूसरी दवा दी जो हर एक घंटे के बाद दूध में घोल कर देनी थी।

रानी को धूप में लिटाना फायदेमंद रहा। उसकी हालत बेहतर होती गयी।

दस दिसंबर की सुबह नरेश और राजेश उसे सोसायटी फॉर प्रिवेंटिंग क्रुएल्टी अगेंस्ट एनिमल्स के हस्पताल के डाक्टर शर्मा के पास ले गए। उन्होंने स्टेथोस्कोप से फेफड़ों की परीक्षा की। उनका भी ख्याल था कि इसे सरदी लग गई है। इसलिए चिकित्सा का क्रम प्रायः वही रखा गया। रानी को पेट की खाल के नीचे एक इंजेक्शन दिया गया और विटामिन एम खिला दी गई।

समुचित उपचार से रानी स्वस्थ होती गई। मानसिक दृष्टि से उसमें कुछ परिवर्तन आ गए। पहले वह किसी को काटती नहीं थी। अब काटने लगी। खासकर खाने के समय अधिक गुस्सा करती थी। उस समय उसे हाथ लगाएँ तो जरूर काट लेती थी। नरेश को उसने कई बार काटा। एक बार मुझे भी काट लिया। खाते समय गुर्राती रहती थी।

बेदी शोध संस्थान
डी-28 राजौरी गार्डन
नई दिल्ली-110027

परिषद् का पृष्ठ

विज्ञान [illegible] प्रयाग को विज्ञान [illegible] के लिए [illegible]

राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2002 का विज्ञान लोकप्रियकरण हेतु राष्ट्रीय पुरस्कार विज्ञान परिषद् प्रयाग को प्रदान किया गया है। यह पुरस्कार विज्ञान परिषद् द्वारा 1997 से 2001 की अवधि में विज्ञान लोकप्रियकरण की दिशा में किए गए कार्यों के लिए दिया गया है।

राष्ट्रीय विज्ञान दिवस की पूर्व संध्या पर 27 फरवरी 2003 को नई दिल्ली में टेक्नोलॉजी भवन के रामन सभागार में आयोजित समारोह में भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्री डॉ0 मुरली मनोहर जोशी से यह पुरस्कार विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रतिनिधि देवव्रत द्विवेदी ने ग्रहण किया। पुरस्कार में
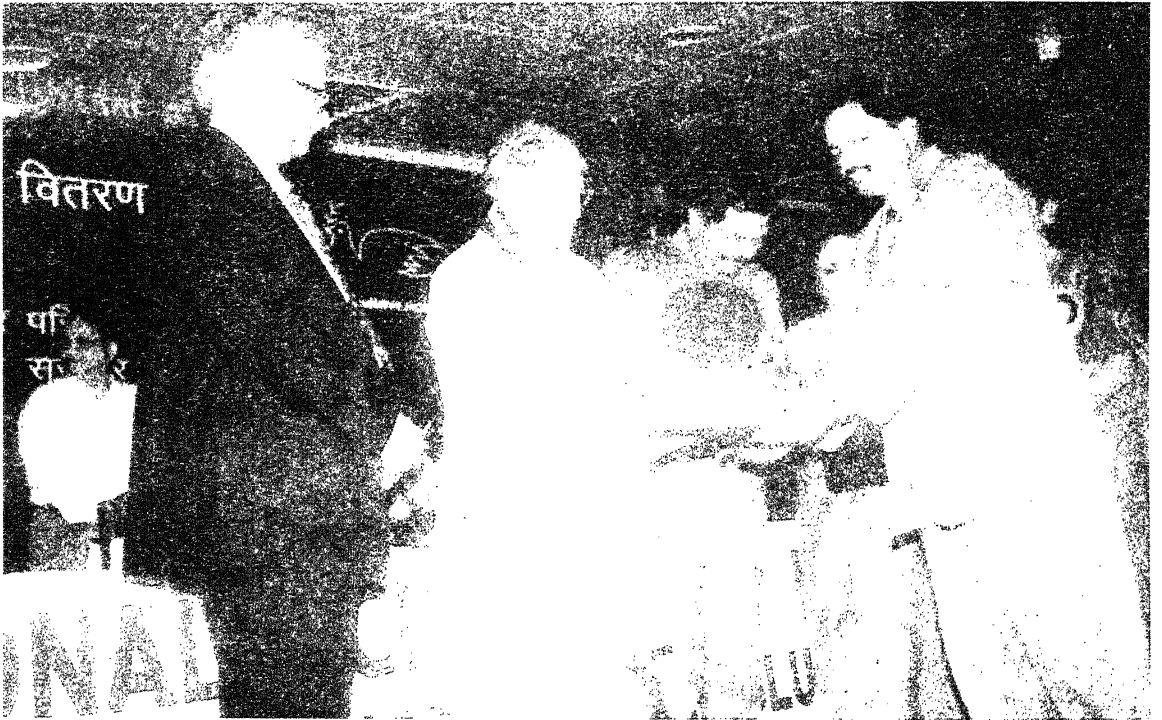
केन्द्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्री डॉ. मुरली मनोहर जोशी से वर्ष 2002 का विज्ञान लोकप्रियकरण हेतु राष्ट्रीय पुरस्कार ग्रहण करते हुए विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रतिनिधि देवव्रत द्विवेदी। साथ में डॉ. वी.एस. राममूर्ति, श्री बच्ची सिंह रावत तथा डॉ. मंजु शर्मा।

एक लाख रुपये, सम्मान पत्र एवं स्मृति चिन्ह सम्मिलित है।

इस अवसर पर भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी राज्य मंत्री श्री बच्ची सिंह रावत, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के सचिव प्रो0 वी.एस. राममूर्ति, जैव प्रौद्योगिकी विभाग की सचिव डॉ0 मंजु शर्मा तथा राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् के प्रभारी श्री अनुज सिन्हा के अतिरिक्त देश के अनेक प्रतिष्ठित वैज्ञानिक, विज्ञान लेखक एवं पत्रकार आदि उपस्थित थे।

–देवव्रत द्विवेदी

विज्ञान परिषद् वड़ोदरा शाखा के द्विवार्षिक चुनाव सम्पन्न

गत 8 फरवरी को परिषद् की वड़ोदरा शाखा के द्विवार्षिक चुनाव सम्पन्न हुए। इनमें प्रो0 कैलाश चन्द्र उपाध्याय, कुलपति महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, संरक्षक, प्रो0 ए.के. रक्षित अध्यक्ष एवं प्रो0 एन. एल. सिंह व प्रो0 आर.वी. कारन्थ उपाध्यक्ष चुने गए।

डॉ0 अरुण आर्य, सचिव, डॉ0 विनय रावले, कोषाध्यक्ष एवं डॉ0 अरुन प्रताप, प्रकाशन मंत्री होंगे। परिषद् की परामर्शदाता समिति में प्रो0 निखिल देसाई, प्रो0 मदन गोपाल गुप्ता, प्रो0 योगेश जयराम, डॉ0 जी. नरेशकुमार, डॉ0 नीलाद्रि रंजन दास एवं सुश्री (डॉ0) गीता पड़ते शामिल होंगे।

परिषद् के आगे आने वाले कार्यक्रमों की रूपरेखा भी तय की गई, 28 फरवरी को विज्ञान दिवस, 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस, अगस्त में पक्षियों/वन्य जीवों पर एक चित्र प्रदर्शनी एवं स्कूलों में विज्ञान विषयों पर वार्तालाप किए जाएंगे।

अरुण आर्य
प्रधानमंत्री
बड़ोदरा शाखा, विज्ञान परिषद् प्रयाग

ऊर्जा संरक्षण संगोष्ठी

जोधपुर। विज्ञान परिषद् प्रयाग की जोधपुर शाखा एवं जोधपुर डिस्कॉम के संयुक्त तत्वावधान में दिनांक 12 दिसम्बर 2002 को ऊर्जा संरक्षण सप्ताह के दौरान एकदिवसीय राज्य स्तरीय संगोष्ठी आयोजित की गई जिसके मुख्य अतिथि जयनारायण विश्वविद्यालय जोधपुर के पूर्व कुलपति प्रो0 लक्ष्मणसिंह राठौड़ थे। संगोष्ठी की अध्यक्षता डिस्कॉम जोधपुर के मुख्य प्रबंधक निदेशक इंजी0 एच.डी. चारण थे।

संगोष्ठी में विज्ञान परिषद् प्रयाग की जोधपुर शाखा के सभापति इंजी. के.एम.एल. माथुर ने विज्ञान परिषद् के उद्देश्यों तथा जोधपुर शाखा के प्रधानमंत्री डॉ0 डी.डी. ओझा ने दैनिक जीवन में ऊर्जा संरक्षण तथा अपारंपरिक, पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों के बारे में विस्तृत जानकारी दी। विज्ञान परिषद् के उपाध्यक्ष डॉ0 पी.के. भटनागर ने नाभिकीय ऊर्जा तथा रेडियो आइसोटोप के बारे में जानकारी प्रदान की और डॉ0 श्रीमती कुंजन त्रिवेदी ने महिलाओं में ऊर्जा संरक्षण की भूमिका को प्रतिपादित किया। काजरी के प्रधान वैज्ञानिक डॉ0 पीयूष पाण्डे ने ऊर्जा संरक्षण के सौर ऊर्जा के विविध पक्षों को उजागर किया तथा 'सोलर सेल' के बारे में भी अवगत कराया। डॉ0 देवेश गुप्ता ने एक्स–रे किरणों एवं विकिरण ऊर्जा के बारे में प्रतिभागियों को जानकारी दी। डिस्कॉम के इंजी0 आर.के. पुरोहित ने विद्युत ऊर्जा संरक्षण के अभियांत्रिकी पक्षों के बारे में बताया। डिस्कॉम जोधपुर के मुख्य प्रबंधक निदेशक इंजी. एच.डी. चारण ने विद्युत रिसाव एवं विद्युत ऊर्जा संरक्षण में डिस्कॉम की भूमिका को बताया तथा विज्ञान परिषद् जोधपुर के विविध कार्यों की बहुत प्रशंसा की। संगोष्ठी में 150 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

डॉ0 डी.डी. ओझा
प्रधानमंत्री विज्ञान परिषद्
जोधपुर शाखा

कुएँ का भूत

विजय चितौरी

डरी–सहमी पिंकी दौड़ती हुई आयी और पापा की गोद में दुबक कर बैठ गई। पापा को असमंजस हुआ। आज रानी बिटिया डरी–सहमी उदास और चुप क्यों है। कहीं मम्मी ने मारा तो नहीं। पापा ने बिटिया के सिर पर हाथ फेरा, प्यार से चुम्बन लिया। फिर बोले, मेरी रानी बिटिया आज उदास क्यों है ? मम्मी ने कुछ कहा क्या ?

पिंकी ने पापा के गले में हाथ डालकर पूछा, पापा! आप तो कहते थे कि भूत–प्रेत कुछ नहीं होता। लेकिन आज तो पापा मैंने उसकी आवाज भी सुन ली।

भूत की आवाज! पापा अपनी हंसी रोक नहीं पाए।

पिंकी फिर उदास हो गई। बोली, पापा, आप तो हंसते हैं। पहले पूरी बात तो सुनिए।

'हाँ सुनाओ बेटी', पापा ने बिटिया को ढाढ़स बँधाया।

पिंकी– पापा, मोहन भैया के साथ मैं बाग में खेलने गई थी। वहाँ एक कुआँ है न ! उसी कुएँ के पास भैया मुझे ले गए और मुझसे बोले, जोर से आवाज करो, मैंने जोर से आवाज लगाई मम्मी, पापा !

कुएँ से भी ऐसी ही आवाज आयी– मम्मी। दुबारा मैंने फिर जोर से आवाज लगाई– पापा। अन्दर से भी यही आवाज आई। पापा, कुएँ में जरूर कोई भूत प्रेत है। मोहन तो यही कह रहा था।

पापा ठठाकर हँसे। कुछ देर तक हँसते रहे। शांत हुए तो मोहन को बुलवाया और डाँटते हुए बोले, मोहन! तुम पिंकी को क्यों उल्टी–सीधी बातें बताते रहते हो। पिंकी कह रही है कि बगीचे के कुएँ में भूत रहता है। यह बात उसे तुमने ही बताई है।

मोहन डरते डरते बोला, चाचा! फिर कुएँ के अन्दर से आवाज क्यों आती है ?

पापा– पगले तुम्हें यदि यह बात नहीं पता थी तो मुझसे पूछना चाहिए था। तुम लगे इसका उल्टा सीधा अर्थ लगाने। आओ बैठो मेरे पास। अभी समझाता हूँ कि यह आवाज कैसे आती है।

पापा ने चेहरा देखने वाला एक शीशा मँगवाया। मोहन से बोले, मोहन इसे लेकर बाहर धूप में जाओ और इसे सूर्य की तरफ करके धीरे धीरे हमारी तरफ इस कमरे की ओर घुमाओ।

मोहन ने ऐसा ही किया। सूर्य की किरणें शीशे से लौटकर पापा और पिंकी के चेहरे पर पड़ने लगीं। पिंकी तो खुशी से चहक उठी। पापा ने मोहन को पुनः अपने पास बुला लिया। आगे पापा ने समझाया क्या देखा तुमने, जब प्रकाश की किरणें शीशे पर पड़ती हैं तो शीशा उन किरणों को लौटा देता है। यह क्रिया शीशा के अलावा स्टील की चमकदार थाली या और भी किसी चिकनी चीज से भी हो सकती है। प्रकाश जैसा गुण आवाज यानी ध्वनि का भी होता है। यह भी किसी चिकने धरातल से टकराने के बाद लौट जाती है। कुएँ से निकली जिस आवाज को तुम लोग भूत की आवाज कह रहे हो वह तो तुम्हारी अपनी ही आवाज थी जो कुएँ के पानी से टकराकर फिर ऊपर आयी थी।

मोहन– लेकिन चाचा, यहाँ कमरे में भी तो हम लोग आवाज कर रहे हैं। यह तो हम लोगों को दुबारा नहीं सुनाई पड़ रही है।

पापा– हाँ, मोहन तुम्हारा सवाल बहुत अच्छा है। ध्वनि तो यहाँ भी दीवारों से टकराकर लौट रही है लेकिन इसे हम लोग सुन नहीं सकते क्योंकि हमारा कान ऐसा बना है कि कोई ध्वनि 1/10 सेकेण्ड या उसके बाद लौटेगी तभी हम उसे सुन पाएँगे। इसके लिए जरूरी है ध्वनि जहाँ से टकराए वह स्थान कम से कम 16.60 मीटर दूर होना चाहिए।

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक : वैज्ञानिकों की रोचक बातें
लेखक : दिलीप एम. सालवी
प्रकाशक : विद्या विहार, 1660, कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली–110002
प्रथम संस्करण : 2003 मूल्य 150/– रु0

श्री दिलीप एम. सालवी मूलतः अंग्रेजी के लोकप्रिय विज्ञान लेखक हैं जिसमें उनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। समीक्ष्य पुस्तक उनकी अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। 167 वैज्ञानिकों की रोचक बातों को समेट सकना अत्यंत ही दुरूह कार्य है, किन्तु लेखक ने ऐसा कर दिखाया है। पुस्तक के छोटे कलेवर में ढेरों जानकारियाँ भरी हुई हैं। ऐसे लोग जो विधिवत विज्ञान की शिक्षा से वंचित रह गए हैं, उनके लिए यह पुस्तक उपयोगी है, किन्तु इस पुस्तक की प्रामाणिकता और बढ़ जाती यदि लेखक ने हिन्दी अनुवाद को कम से कम एक बार आदि से अंत तक पढ़ने का प्रयास किया होता। यह अनुवाद या तो जल्दी में हुआ है अथवा अनुवादक को विज्ञान और हिन्दी भाषा पर अधिकार नहीं है। वैज्ञानिकों के नाम कालक्रम में होते अथवा विषयगत तो अधिक उपयुक्त होता। कहीं कहीं वैज्ञानिकों के नामों के उच्चारण सही नहीं हैं– यथा रमन के स्थान पर रामन होना चाहिए। अनेक स्थलों पर वाक्यों की रचना दोषपूर्ण है और भाषा में प्रवाह भी नहीं आ पाया।

पुस्तक को जल्दी से जल्दी पूरा करने के उत्साह में तथ्यों की कुछेक जानकारियों पर भी ध्यान नहीं दिया गया है। जैसे पृष्ठ 58 पर अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के वैज्ञानिक डॉ0 नीलरत्न धर के विषय में पहली ही पंक्ति है– हालाँकि नीलरत्न धर (1892–1986) अल्पज्ञात वैज्ञानिक हैं।

पृष्ठ 111 पर रामानुजन के विषय में 'न पचने वाले विषय' के अंतर्गत प्रथम पंक्ति में रामानुजन की जगह रमन लिखा हुआ है।

प्रस्तावना में लेखक का कथन है– हालाँकि यह पुस्तक गैर विज्ञानी दृष्टि से लिखी गई है, वैज्ञानिकों के विषय में लिखी बातें क्या गैरविज्ञानी दृष्टिकोण से लिखी जा सकती हैं ?

वैसे पुस्तक की छपाई अच्छी है, कागज बढ़िया है, कवर आकर्षक है, मूल्य उचित है, किन्तु पूरी पुस्तक में 167 वैज्ञानिकों में मात्र 14 भारतीय वैज्ञानिकों को स्थान देना उचित नहीं जान पड़ता है। बीरबल साहनी, आर्यभट्ट, चरक एवं सुश्रुत जैसे वैज्ञानिकों के विषय में जानकारी का न होना खटकता है। फिर भी लेखक और प्रकाशक दोनों ही बधाई के पात्र हैं। वैसे पुस्तक के अगले संस्करण में उपरोक्त दोषों का परिहार हो जाएगा, ऐसी आशा की जानी चाहिए और तब पुस्तक और भी उपयोगी हो जाएगी।

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
पूर्व सम्पादक 'विज्ञान'
विज्ञान परिषद् प्रयाग

मोहन– चाचा, यह बात तो समझ में नहीं आयी।

पापा– मोहन ध्वनि की चाल 332 मीटर प्रति सेकेण्ड होती है। 1/10 सेकण्ड में ध्वनि 33.2 मीटर रास्ता तय करेगी। इसक मतलब ये हुआ कि 33/2 = 16.6 मीटर ही लौटकर आए तब तक समय हो जाएगा। 1/10 सेकेण्ड और हम उसे सुन सकते हैं। देखो हमारे आँगन के कुएँ का पानी करीब 10 मीटर पर ही है। इसमें लौटकर आने वाली ध्वनि हम नहीं सुन सकते।

बात खत्म हुई तो पापा ने फिर पूछा, हमारी बात तुम दोनों की समझ में आयी ?

पिंकी और मोहन दोनों चहकते हुए बोले, हाँ। और कुएँ का भूत भी भाग गया।

ग्रामोदय प्रकाशन
घूरपूर-इलाहाबाद

पृष्ठ 3 का शेष ....

एक गाय का क्लोन बनाने के लिए 15,000 से 25,000 डालर तक वसूले जाते हैं। अमरीका की एक सुपर गाय जीटा ने दूध देने के सारे रिकार्ड तोड़ दिए थे। मर गई तो उसके कानों की दो कोशिकाओं से दो कलमी बछिया जीटा–2 और जीटा–3 पैदा की गईं। ऐसी अच्छी नस्ल के क्लोन तो 40,000 डालर या इससे ज्यादा में भी बिक रहे हैं। बेचने में अमरीकियों का कोई जवाब नहीं। अगर आप इंटरनेट खोलें तो पाएँगे कि 10000 से 50000 डालर में हालीवुड की मनचाही तारिकाओं और सितारों के क्लोन उपलब्ध कराने का दावा किया जा रहा है। फिलहाल रेलियन सम्प्रदाय के गुरु क्लाड वोरिलहोन ने ऐसे 2000 व्यक्ति ढूंढ लिए हैं, जो अपने या अपने चहेतों के क्लोन बनवाने के लिए क्लाडम् शरणं गच्छामि का कीर्तन कर रहे हैं।

457, हवा सिंह ब्लाक
एशियाड कॉम्प्लेक्स, नई दिल्ली–49

पृष्ठ 10 का शेष ....

साथ आदिमानव में शारीरिक रचना के साथ बौद्धिक क्षमता में भी विकास हुआ। इस विकास यात्रा में कई शाखाएँ–प्रशाखाएँ भी बनीं। इसी से होमिनिड की कई प्रजातियाँ मिलती हैं। आधुनिक मनुष्य की प्रगति में निर्णायक मोड़ तब आया जब उसने आग जलाने की कला सीखी। इससे उसके जीवन में आमूलचूल परिवर्तन आया। आग की खोज के बाद कृषि और पशुपालन ने सामाजिक जीवन की नींव डाली। धात्विक खोज और निष्कर्षण की युक्ति की भूमिका महत्वपूर्ण रही। पहिए की खोज ने प्रौद्योगिकी की ओर कदम बढ़ाने में मदद की। भाषा और लिपि का विकास पिछले कुछ हजार वर्षों की बातें हैं। पिछले दस हजार वर्षों में इंसान में हर स्तर पर क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। आणविक जीवविज्ञान से पता चलता है कि जेनेटिक तौर पर (डी.एन.ए. संरचना) आज का मनुष्य 99 प्रतिशत चिंपांजी के समान है। मानव विकास पर हुए शोध के अनुसार बन्दर को मनुष्य का पूर्वज नहीं कहा जा सकता। हाँ, अलबत्ता यह कहना सही होगा कि एक समय बन्दर, कपि और मनुष्य के पूर्वज एक थे।

वैज्ञानिक
होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र
वी.एन. पुरव मार्ग, मानखुर्द
मुम्बई–400048

फार्म 4

(Form IV)

1. प्रकाशन स्थान : विज्ञान परिषद् प्रयाग

2. प्रकाशन अवधि : मासिक, प्रत्येक मास का 15 दिनांक

3. मुद्रक का नाम : डॉ0 शिवगोपाल मिश्र

क्या भारत का नागरिक है ? हाँ

पता : प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002

4. प्रकाशक का नाम : डॉ0 शिवगोपाल मिश्र

क्या भारत का नागरिक है ? हाँ

पता : प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002

5. सम्पादक का नाम : डॉ0 शिवगोपाल मिश्र

क्या भारत का नागरिक है ? हाँ

पता : प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002

6. *उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक साझेदार या हिस्सेदार हों :*

विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–2

मैं शिवगोपाल मिश्र एतत् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

दिनांक 1.3.2003

डॉ0 शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद–211002

डॉ0 शिवगोपाल मिश्र द्वारा विज्ञान परिषद् प्रयाग महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002 के लिए संपादित, मुद्रित एवम् प्रकाशित।
नागरी प्रेस, 91/186, अलोपी बाग, इलाहाबाद में मुद्रित।

विज्ञान परिषद् प्रयाग

द्वारा आयोजित

अखिल भारतीय लेखन प्रतियोगिता 2003

ह्विटेकर पुरस्कार

1. लेख अथवा पुस्तक केवल विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
2. केवल प्रकाशित लेखों अथवा पुस्तकों पर ही विचार किया जाएगा।
3. लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।
4. लेख अथवा पुस्तक के प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
5. इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख अथवा पुस्तक जनवरी 2002 से दिसम्बर 2002 माह के बीच प्रकाशित हो।
6. लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख अथवा पुस्तक मौलिक है।
7. विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
8. इस वर्ष के पुरस्कार के लिए प्रविष्टि भेजने की अनितम तिथि 31 मार्च 2003 है।
9. पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागी को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जाएगा।

पुरस्कार की राशि एक हजार रुपये है।

प्रविष्टियाँ निम्न पते पर भेजें :

प्रधानमंत्री

विज्ञान परिषद् प्रयाग

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

फोन नं० : (0532) 2460001